१ ओंकार श्रीवाहिगुरुजी की फतह ।

श्री दशमगुरु काव्यामृतसार

श्री गुरु नानकदेव सत्संग सभा,
जयपुर ।

समालोचनार्थ—

लोक प्रमाणीकरण ११८४-११८५

श्री दशमगुरु काव्यामृतसार

8.1,17
37381

सिक्ख इतिहास माला के अनुपम पुष्प ।

[रचयिता—डा० सरदार जसवन्त सिंह]

प्रथम पुष्प ।

श्री गुरु नानकदेव जी—अब तक प्रकाशित जीवनियों में यह जीवनी एक विशेष स्थान रखती है और बड़ी खोज के साथ लिखी गई है। मूल्य १॥)

द्वितीय पुष्प ।

सिक्खों के गुरु—श्रीगुरु अंगददेव जी द्वितीय गुरु से लेकर नवें गुरु श्री गुरु तेग बहादुरजी तक अर्थात् आठों गुरुओं का जीवन चरित्र और उनकी अमृतवाणी। मूल्य १॥)

तृतीय पुष्प ।

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी—यह जीवनी अब तक प्राप्त होने वाले प्राचीनतम और प्रारम्भिक आधारों पर लिखी गई है। गुरु जी की स्वयं की रचनाएँ भी देदी गई हैं। ४०० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल १॥)

चतुर्थ पुष्प ।

वीर ख़ालसा—श्री गुरुगोविन्दसिंहजी से लेकर वर्त्तमानकाल तक। यह अनुपम ग्रन्थ न केवल सिक्खों ही के मनन करने की वस्तु है अपितु हिन्दु मात्र को इसे पढ़कर शक्ति सञ्चय करना चाहिये। बलिदान के जीते जागते चित्र। मूल्य १॥)

अपूर्व प्रतिकार—प्रतिकार किसे कहते हैं! उसका आदर्श कितना उच्च है, देखना हो तो इस पुस्तक को पढ़िये और अपने जीवन को स्वर्गीय आभा से भरिये। मूल्य ≈) आना

१ ओंकार सतिगुरु प्रसादि ।

श्रीदशमगुरु काव्यामृतसार

अर्थात्

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी

की

अमृत वाणी का

दिग् दर्शन ।

श्री गुरु नानकदेव सत्संग सभा,

जयपुर ।

१०००] १९३५ ई० [मू० ॥)

प्रकाशक व संग्रहकर्ता—

डा० सरदार जसवन्तसिंह,
ऐम० ए०, बी० ऐस-सी०, ऐन० डी० (लन्दन),
नं० ५७ गुइन रोड, लखनऊ ।

मुद्रक :—

बाबू मंगीलाल गुप्त,
एच० डी० इलैक्ट्रिक प्रिंटिंग वर्क्स,
मथुरा ।

विषय सूची।

पृष्ठ संख्या

सिक्ख इतिहास माला के अनुपम पुष्प।

[रचयिता—डा० सरदार जसवन्त सिंह]

प्रथम पुष्प।

श्री गुरु नानकदेव जी—अब तक प्रकाशित जीवनियों में यह जीवनी एक विशेष स्थान रखती है और बड़ी खोज के साथ लिखी गई है। मूल्य १॥)

द्वितीय पुष्प।

सिक्खों के गुरु—श्रीगुरु अंगददेव जी द्वितीय गुरु से लेकर नवें गुरु श्री गुरु तेग बहादुरजी तक अर्थात् आठों गुरुओं का जीवन चरित्र और उनकी अमृतवाणी। मूल्य १॥)

तृतीय पुष्प।

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी—यह जीवनी अब तक प्राप्त होने वाले प्राचीनतम और प्रारम्भिक आधारों पर लिखी गई है। गुरु जी की स्वयं की रचनाएँ भी देदी गई हैं। ४०० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल १॥)

चतुर्थ पुष्प।

वीर ख़ालसा—श्री गुरुगोविन्दसिंहजी से लेकर वर्त्तमानकाल तक यह अनुपम ग्रन्थ न केवल सिक्खों ही के मनन करने की वस्तु है अपितु हिन्दु मात्र को इसे पढ़कर शक्ति सञ्चय करना चाहिये। बलिदान के जीते जागते चित्र। मूल्य १॥)

अपूर्व प्रतिकार—प्रतिकार किसे कहते हैं! उसका आदर्श कितना उच्च है, देखना हो तो इस पुस्तक को पढ़िये और अपने जीवन को स्वर्गीय आभा से भरिये। मूल्य ≈) आना

भूमिका

सिक्खों के अन्तिम (दशम) गुरु श्री गोविंदसिंह जी एक दृढ़संकल्प धर्मगुरु,एक विजयी युद्धवीर और एक कुशल नीतिपरायण नेता होने पर भी एक सिद्धहस्त प्रवीण कवि भी थे। यह बात कि वे अच्छे कवि भी थे जन साधारण को ही क्या बहुत से साहित्य प्रेमियों को भी भली भांति विदित नहीं होगी। गुरुजी ने अनेक ग्रंथ निर्माण किये थे। उनकी सभा में अच्छे अच्छे बावन कवि थे। वे शास्त्र, विद्वान् और साहित्य के अविरल प्रेमी थे। थोड़े से जीवनकाल में (४२ वर्ष की अवस्था में) उन्होंने बहुत भारी अन्य धार्मिक, राजनैतिक, सैनिक और जाति निर्माण के कार्य करते हुए भी, भारतीभावना अवधारित करली थी। यह उनकी प्रबल प्रतिभा और ईश्वरदत्त शक्ति का प्रसाद था कि भारी भारी जानजोखम और जटिलताग्रस्त काम हाथ में रहते, तीर कमान और खड्ग धारण करते हुए भी वे लेखिनी का वार भी उतनी ही पटुता से करते थे जितना कि शस्त्रास्त्र का। उनके समग्र ग्रन्थ गुरुमुखी लिपि में सिक्ख विद्वानों के पास विद्यमान हैं, उस लिपि

में वे प्रायः मुद्रित भी होगये हैं, अनेक उत्तम सम्पादन टीका सहित भी हैं। परन्तु नागरीअक्षरों (हिन्दी लिपि) में पूर्ण सुन्दर रूप में अभीतक प्रकाशित नहीं हुए हैं। यह युग हिन्दी के प्रकाश और प्रचार का है। हिन्दी राष्ट्र भाषा मानी गई है। हिन्दी जगत में हमारे देश के ऐसे एक महान् शक्ति और उच्च-प्रतिभा के पुरुषरत्न की उत्तम उपयोगी कविता का प्रकाशन कर देना कितना आवश्यक है, यह विचारशील पुरुषों के ध्यान से अति दूर नहीं है। अभी तो इस संग्रह में संग्रहकार ने उनके कुछ मुख्य ग्रन्थों में से कतिपय छन्द छांट छांट कर रक्खे हैं जिससे उनकी कृतियों की बानगी वा चाशनी उत्सुक और रसिक पाठकों को सहज में प्रा हों और उन ऐसे कवि-वीर की रचनाओं का वे किंचित् आस्वादन कर सकें। समग्र-ग्रन्थों का सम्पादन समय पाकर हो सकैगा। संग्रहकार डाक्टर सरदार जसवन्तसिंह जी का यह उद्योग सराहनीय है कि इस दिशा में वे पूर्ण प्रयत्नशील हैं और यह संग्रह उन्होंने बहुत सावधानी और ध्यान से किया है। इसके पठन, पाठन, श्रवण और मनन से जनसाधारण, विद्यार्थियों और साहित्य-प्रेमियों को बहुत लाभ होगा। यह पुस्तक स्कूलों, पाठशालाओं और धर्म समाजों में पाठ्यपुस्तक नियत करदी जाय तो देशके युवकों और धर्म-प्रेमियों को विशेष लाभ हो सकैगा। गुरु गोविंदसिंह जी के निर्मित ग्रन्थ निम्न-लिखित हैं:—

(१) जापजी, (२) अकाल स्तुति, (३) विचित्र नाटक, (४) चंडी चरित्र दो, (५) चंडी की वार, (६) ज्ञानप्रबोध, (७) चौबीस अवतार, (८) हजारे के शब्द, (९) ३३ सवैये,

(१०) शस्त्रनाम माला, (११) पख्याने त्रिया चरित्र, (१२) ज़फ़र नामा, (१३) हिकायतें, (१४) सर्वलोह प्रकाश।

संख्या (१) से (१३) तक के ग्रन्थ सब एकत्रित किये हुए हैं और इनही को "दशम ग्रन्थ" नाम दिया हुआ है—अर्थात् दशमगुरुजी के ग्रन्थ। संख्या (१४) का ग्रन्थ अभी तक सर्व-साधारण में अप्रचलित है परन्तु सुरक्षित है। यह एक वृहत्काम ग्रन्थ होने के कारण अभी तक मुद्रित नहीं हो सका। इस में खालसा मत के सिद्धांत और वीरता के प्रकरण वर्णित हैं।

अब उक्त दशमग्रन्थ में के ग्रन्थों से प्रस्तुत "श्री दशम-गुरु-काव्यामृत-सार" संग्रह में जिन जिन अंशों को लिया है उनको अति संक्षेप से बताते हैं। यथाः—

(१) "जापुजी" ग्रन्थ से ४५ छन्द हैं। इनमें भगवान वाहगुरु श्री अकाल पुरुष की स्तुति, ध्यान, महिमा, गुणानुवाद अनेक छन्दों में बड़े ओज के शब्दों और वाक्यों में वर्णित हैं। चित्त पर गम्भीर भाव समुत्पन्न होता है।

(२) "अकालस्तुति" से १३२ छन्द हैं। जिनमें चौपाई, कवित्त, सवैये, तोमर, नराज, भुजंगप्रयात, पाधड़ी, तोटक छन्दों में अकाल पुरुष की स्तुति, महिमा, गुणगान, उपदेश, चितावनी बहुत सुन्दरता से कथित हैं।

(३) "विचित्र नाटक" से श्री काल पुरुष की स्तुति के ३७ छन्द दिये गये हैं। इनमें कृपाण, गदा, तीर, कमान आदि की शक्ति का प्रभाव कहकर काल की महिमा कही गई है :— "जे जे हुते अकटे बिकटे सुकटे करि काल कृपान के मारे" इत्यादि सुन्दर प्रभोत्पादक उक्तियाँ हैं।

(४) "चंडी चरित्र" से केवल एक ही छन्द दिया है

सो भी सारभरा बड़े उच्चभाव का है—"जब आव की औध निदान बनै, अति ही रण मैं तब जूझ मरौं"।

(५) "ज्ञान प्रबोध" से ४९ छन्द दिये गये हैं। इनमें भांति भांति के छन्दों में बड़े समारोह से ईश्वराधन किया है। यह कितना सुन्दर छन्द है:—

आतमा प्रधान जाहि सिद्धता सरूप ताहि,
बुद्धता बिभूत जाहि सिद्धता सुभाव है।
× × × × ॥८॥४७॥

(६) "चौबीस अवतार" से ३९ छन्द संग्रह किये गए हैं। कुछ नमूने बड़े ही सुन्दर हैं:—

जब जब होत अरिष्ट अपारा। तब तब देह धरत अवतारा॥
× × × । × × × ॥२॥

सीस दियो उन सिरं न दीना। रंच समान देहि करि चीना॥२६॥
पाइ गहे जबते तुमरे, तबते कोउ आँखि तरे नहिं आन्यों।
× × × × × ॥८६३॥

(७) "हज़ारे के शब्द" १० पद (भजन-गायन के) दिये हैं। सबही कितने भाव भरे सुन्दर गायनोपयोगी पद हैं।

(८) "सवैये" से सबही तैंतीस छन्द दे दिये हैं क्योंकि एक तो सबही उत्तम हैं फिर संख्या भी बड़ी नहीं। सुन्दर छन्द और उच्च आशय हैं।

(९) "त्रिया चरित्र" से एक तो "नूपकुंवरी का चरित्र" लिखा गया है। इससे गुरुजी का दृढ़ ब्रह्मचर्य प्रमाणित होता है। और फिर "रणखंभकला का चरित्र" लिखा है जिसमें एक राजा की बेटी रणखंभकला ने अपने गुरु को उपदेश किया

कि ईश्वर मूर्तियों में ही नहीं है वह सर्व व्यापी और निराकार है। और कपटी उपदेशकों की निंदा की है। यथाः

औरन उपदेश करै आपु ध्यान कौ न धरै,
लोगन को सदा त्याग धन को दृढ़ात हैं।
तेही धन लोभ ऊंच नींचन के द्वार द्वार,
लाज कौ त्यागि जेही तेही पै घीघात हैं॥
कहत पवित्र हम रहत अपवित्र खरे,
चाकरी मलेच्छन की कै कै टूक खात हैं।
बड़े असन्तोषी हैं कहावत सन्तोषी महा,
एक द्वार छांडि मांगि द्वारै द्वार जात हैं॥ १९॥

अंत में "विनती" के २६ छंद बहुत उत्तम हैं जिनमें बहुत से भक्ति और करुणा के हैं। प्रायः नित्य ही सिक्ख लोग इनका पाठ करते हैं।

संग्रह के अन्त में गुरु गोविंदसिंह जी की सभा के कवियों की नामावली देकर उनमें के ९ कवियों—१ अमृतराय, २ आलम शाह, ३ मंगल, ४ सारदा, ५ सुदामा, ६ सुन्दर, ७ सेनापति, ८ हंसराम, ९ हीर—के कुछ चुनेहुए और कुछ और फुटकर कवित्तादि दिये हैं जिनमें गुरु जी की प्रशंसा और गुणों का बखान है। अन्त में कुछ छंद कवि मेघसिंह और संतोषसिंह के भी दिये हैं। कवि संतोषसिंह के दो छंद नमूने के तौर पर यहाँ देते हैं—

राम छत्रि बन्ध पर, राम दसकन्ध पर,
राम! जरासन्ध पर, त्रै ज्यों नरसिंह हैं।
रुद्र जिउँ मार पर, वैनतेय मार पर,

पौन दीप मार पर, मार पर सिंह हैं ॥
सूर तमबृन्द पर, सूर रणदुन्द पर,
सूर दिती नन्द पर, दूजे नरसिंह हैं।
काल सरबंस पर, दावा बन बंस पर,
त्यों मलेच्छ बंस पर, श्री गोबिंदसिंह हैं ॥ ७ ॥ ❀
छाय जाती एकता अनेकता बिलाय जाती,
होवती कुचीलता कतेबन कुरान की।
पाप ही प्रपक्क जाते धरम धसक्क जाते,
बरन गरक्क जाते सहित बिधान की ॥
देवी देव देहरे "सन्तोषसिंह" दूर होते,
रीति मिट जाती कथा बेदन पुरान की।
श्री गुरु गोबिंदसिंह पावन परम सूर,
मूरति न होती जौ पै करुणानिधान की ॥ ९ ॥

इस प्रकार यह सारसंग्रह १२८ पृष्ठों पर, दिग्दर्शन रूप में साहित्य-प्रेमियों, गुरुभक्तों और देशहितैषियों के लाभ के लिये सम्पादक महाशय ने बहुत देख भाल कर प्रकाशित करा के सर्व साधारण के सामने धर दिया है। पाठक गण अपना मनोरंजन और आत्मगौरव तथा मनोन्नति करके लाभ के भागी हों।

गुरु गोविन्दसिंह जी की कविता अनेक रूप धारिणी है। उनकी कविता को समझने के लिए यह बात सदा ध्यान में

❀ महाकवि चंद और भूषण के छंदों की समता का है। स्यात् उनसे भाव और कविता में बढ़ा हुआ है।

रखनी चाहिये कि साधारण कवियों और उनकी सभा के कवियों की तरह वे कोई पेशेवाले कवि नहीं थे। कविता का गुण उनमें जन्म से ही था। और यह भी याद रखना चाहिए कि वे एक धर्म गुरु थे, वीर योद्धा थे और देश के लिये प्राण हथेली पर रखते थे। धर्म के द्रोहियों की अच्छी तरह खबर लेते थे। दीनों को धर्म के नाते अत्याचारियों से बचाते थे। परमात्मा के वे सच्चे और ध्रुव भक्त थे। प्रत्येक काम और विचार में ईश्वर का भाव सदा सामने रहता था। ऐसे धार्मिक पुरुष की कविता में कैसा रस व्याप्त होसकता है इस बात के समझने में कठिनाई नहीं है। धर्म का आस्वादन सर्वत्र मिलेगा। तथापि उनकी कविता एक कुशल कवि की कविता है। इसमें ओज, प्रसाद और माधुर्य यथास्थान भरे हुये हैं। छन्दों में रस, अलकार और चातुर्य्य हर जगह मिलते हैं।

(क) **ओज** गुण का उदाहरण यथा:—

खग खंड बिहंडं, खलदल खंडं, अति रणमंडं, बरबंडं।
भुजदंड अखंडं, तेज प्रचंडं, जोति अमंडं, भान प्रभं॥
सुखसंतौंकरणं, दुरमतिदरणं, किलबिषहरणं, असिसरणं।
जै जै जग कारण, सिस्ट उबारण, मम प्रतिपारण, जै तेगं॥२॥

(विचित्र नाटक)

(ख) **प्रसाद** गुण का उदाहरण यथा:-

दीनन की प्रतिपाल करै नित, संत उबार गनीमन गारै।
पच्छि पसू नग नाग नराधिप, सर्ब समै सब को प्रतिपारै॥

पोषत है जल में थल में, पल में कल के नहिं कर्म बिचारै।
दीनदयाल दयानिधि दोषन देखत है पर देत न हारै॥१।२४३॥

(अकाल स्तुति)

(ग) माधुर्य गुण का उदाहरण यथा :—

मीन मुरझाने कंज खंजन खिसाने अलि,
फिरत दिवाने बन डोलैं जिति तित ही।
कीर औ कपोत बिंब कोकिला कलापी बन,
लूटे फूटे फिरैं मन चैन हूँ न कित ही॥
दारिम दरकिगयौ पेखि दसनन पाँति,
रूप ही की क्रांति जग फैल रही सित ही।
ऐसी गुनसागर उजागर सुनागर है,
लीनों मन मेरो हर नैन कोर चित ही॥ ८९॥ ❀

(चंडी चरित्र नं० १)

गुरुजी की कविता का आस्वादन मात्र ही इस संग्रह से होगा। विशेष ज्ञान सर्व कविता के प्रकाशन से मिलैगा। वहीं रस, अलंकार, काव्यांगों की छटा को दिखाया जा सकता है। प्रेमी पाठक अभी तो इस थोड़े से ही संतोष करैं। और इसी से "स्थाली पुलान्यायेन" गुरुजी की काव्यशक्ति और सद्भावों का अनुमान करके लाभ के भागी हों।

❀ दैत्य ने राजा सुंभ के प्रति चण्डी का रूप वर्णन किया है।

(चरित्र)

अब थोड़ा सा गुरु जी का चरित्र भी यहाँ दे दिया जाता है जिससे उनके संबन्धी अपेक्षित वा आवश्यक घटनाओं का परिचय हो सके।

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी श्री गुरु नानकदेव से शिष्य परम्परा में दशम गुरु थे, (२) श्री अंगद देव (३) अमर दास (४) रामदास (५) अर्जुन देव (६) हरगोविंद (७) हरराय (८) हरकिशन और (६) तेग़ बहादुर, आदि गुरु नानक देव के पीछे और दशम गुरु गोविन्दसिंह के पहले हुए।

गुरु गोविन्द सिंह गुरु तेग़बहादुर के औरस पुत्र थे। इनकी माता का नाम गूजरी था। इनका जन्म पटने में मि० पोस सुदि ७ सं० वि० १७२३ में हुआ था जब इनके पिता आँबेर के राजा रामसिंह के साथ लड़ाई में आसाम में गये हुए थे। वहीं इनके जन्म की ख़बर मिली थी। आसाम से लौटने पर गुरु तेग़ बहादुर थोड़े समय तक पटने में रह कर पंज़ाब को चले गए थे। बालक गोविन्दसिंह कुछ वर्षों तक अपनी माता और दादी के पास पटने में रहे। वहीं इनका पालन पोषण हुआ और धर्म तथा शस्त्रास्त्र की शिक्षा मिली। फिर ये भी पंजाब गये। बालपन ही में गोविन्द ने अपनी कुशाग्रबुद्धि, धर्म प्रीति और वीरता का परिचय दिया। सब को यह भरोसा होगया कि यह सर्वगुण सम्पन्न धर्मगुरु, वीर योद्धा और नाम करने वाला पराक्रमी पुरुषसिंह हो जायगा।

पटना से कुछ वर्षों पीछे पंजाब में अपने पिता के पास दादी और माता सहित आनन्दपुर आये। यहां भी सब प्रकार

की तालीम जारी रही। परन्तु पिता का सुख थोड़े ही दिन भोग पाए। बादशाह औरंगजेब का जुल्म पंजाब में बहुत अधिक फैल चुका था। धर्म की रक्षा के लिये गुरु तेग़बहादुर बड़े धैर्य्य और वीरता तथा दृढ़ता से बादशाह ज़ालिम के जुल्म से मि० मांगशिर सुदि ५ सं० वि० १७३२ में देहली में शहीद हुए। तब गोविन्दसिंह ९ वर्ष के बच्चे ही थे। उनके हृदय पर पिता के इस प्रकार बध किये जाने का बहुत गहरा असर पड़ा। तब ही से दुष्टों के निवारण करने के अनेक मनसूबे उन्होंने बांधे जिनको आगे चल कर अपनी जीवनी में उस अद्भुत शक्ति और चमत्कार से कर दिखाया कि आज तक संसार में उनका सत्कार्य्य और सत्कीर्त्ति अमर हैं और "ख़ालसा" सम्प्रदाय का वह समुदाय भारतवर्ष में स्थापन किया कि जिसके जोड़का विरला ही नर समाज भारतवर्ष ही में क्या इस संसार ही में हो तो हो। सिक्ख जाति की शक्ती की महानता गुरु गोविन्दसिंह के ही प्रभाव से अधिक बढ़ी थी। उनके पक्के सिद्धांतों ने ही इस शक्तिशाली जाति का गौरव बढ़ाया था।

पिता के पीछे ये गुरु गादी पर विराजे। अच्छे गुरु होनहार अगुआ और नेता के सुलक्षण दिखाए। पुराने और नये सब सिक्खों को प्रतिष्ठा और प्रेम से अपनाया। शस्त्रास्त्र, सेना और सामान बढ़ाया। कुछ वर्षों में बड़ी उन्नति करली। आनन्दपुर को उन्नत कर दिखाया।

सं० १७३५ में गुरुजी का जीतो देवी के साथ आनन्दपुर में विवाह हुआ।

गुरु गोविन्दसिंह को शस्त्रों और सेना का बड़ा भारी शौक़ था। इनको वे बढ़ाते रहे। नक्कारे निशान बनाए। पास के

राजा डाह रखते परन्तु इनका कुछ न बिगाड़ सके। उन पर इनकी शक्ति का प्रभाव बढ़ता गया। कई तो इनके अनुयायी रहे और कई विरुद्ध।

नाहन के राजा मेदिनी प्रकाश को सहायता देकर उसकी दबी हुई भूमि गढ़वाल के राजा फतहशाह से दिलवाई। तब से मेदिनी प्रकाश इनका मुती रहा और इनके लिए यमुना के किनारे "पाउँटा" का स्थान और क़िला बनवादिया।

वहां के भयानक जंगल में महा भयानक "जयद्रथ" नाम के सिंह को गुरुजी ने ललकार कर मार गिराया जो किसी के वश में नहीं आता था।

कहलूर के राजा भीमचन्द से दबकर फ़तहशाह ने गुरुजी से उलटी राड़ की। परन्तु हारगया और भाग निकला।

माघ सुदि ४ सं० १७४३ में गुरुगोविंदसिंहजी के प्रथम पुत्र अजीतसिंह का जन्म हुआ।

भीमचन्द भी अब गुरुजी से मेल करने आगया। और जब राजालोगों ने बादशाह औरंगज़ेब को खिराज देने से इनकार किया तो इन पर बादशाह की फ़ौजकशी हुई। उसमें भीमचन्द आदि ने गुरुजी की सहायता चाही। नाहण के मुकाम पर लड़ाई हुई, उसमें गुरुजी की बिजय हुई। अलिफ़खाँ और दूसरे राजा हार गये।

मि० चैत वदि ७ सं० १७४७ में गुरुजी के दूसरा पुत्र जोरावर सिंह का जन्म हुआ।

अलिफ़खाँ की हार होजाने पर लाहौर का नवाब दिला-

[वरखाँ चढ़ आया परन्तु वह भी गुरुजी से हार कर भाग गया । फिर दिलावरखाँ ने हुसैनखाँ को और सेना देकर भेजा। वह भी हार गया और गुरुजी और साथी राजाओं की विजय हुई । यों हार पर हार सुनकर बादशाह ने अपने शाहजादे मोअज्जम को पहाड़ी राजाओं पर कर वसूल करने को भेजा। परन्तु गुरुजी का ऐसा असर पड़ा कि शाहजादा और उसका सेनापति मिर्जाबेग गुरुजी के भक्त हो गये।

मि० माह सु० १ सं १७५३ को गुरुजी के तीसरा पुत्र जुझारसिंह उत्पन्न हुआ।

अब गुरुजी अपनी सेना और शक्ति को बढ़ाते रहे और धर्म का प्रचार और कई कौतुक और चमत्कार दिखाते रहे।

मि० कातो सु० ११ सं० १७५५ को गुरुजी के चौथा पुत्र फ़तहसिंह प्रगट हुआ। यों गुरुजी के चार चमत्कारी पुत्र थे जो संसार में बड़े नाम पैदा कर गये जिनका कुछ चरित्र आगे आवैगा ।

अब गुरुजी ने "ख़ालसा" सिक्ख समुदाय की सृष्टि की। यह सिक्खों का एक सुदृढ़ और सच्चे वशीभूत जाति बना देने का अद्भुत प्रयोग था। बैशाख सं० १७५६ में सब सिक्खों की बुलाईहुई बड़ी भारी सभा में गुरुजीने पांच सिर मांगे। बिविध देशों के पांच पुरुषों ने सिर देना अंगीकार किया। ये पांचही पुरुष "पांच प्यारे" कड़ाह । फिर कड़ाह में शुद्ध जल अभिमंत्रित करके इन पांचों को अमृत पिलाया । इसमें गुरुपत्नी जीतोदेवी ने बताशे मिलाकर मीठा कर दिया। इनहीं पांच ख़ालसा के आदि शिष्यों से स्वयम् गुरु जी भी ख़ालसा बने और अमृत चक्खा

फिर जोश फैला तो ५ पुरुष ख़ालसा हुए वे 'मुक्ते" कहाए। फिर १२५ और पुरुष भी ख़ालसा बने। फिर तो नदी के प्रवाह की तरह यह जोश फैलता गया और हज़ारों होकर लाखों नर नारी खालसा बन गए। और यह सिद्धांत स्थिर किया:—

गुरु घर जन्म तुम्हारे होए। पिछले जाति बरण सब खोए।
चार बरण के एको भाई। धरम ख़ालसा पदवी पाई॥
हिन्दू तुरक ते आहि निआरा। सिंह मजब अब तुमनै धारा।
राखहु कच्छ, केश, किरपान*। सिंह नाम को यही निशान॥

(पथ प्रकाश से)

और "वाहगुरूजी का ख़ालसा, वाहगुरू जी की फ़तह" यह वाक्य खालसा धर्मवालों का मुख्य शब्द है जो बोलचाल वा पढ़ने लिखने में सर्वत्र सर्वदा बरता जाता है। ख़ालसा शब्द का अर्थ पवित्र, मुक्त और निराला है।

इस वीर मनुष्य समुदाय की उन्नति से पहाड़ी राजा और बादशाह भी शंकित हुए थे। राजाओं ने अपने दूत और बादशाह ने अपना दूत गुरु जी के पास भेजे थे जो वहां की सतयुगी राहो-रस्म देखकर उलटे अनुयायी बन गये थे। राजाओं को गुरु जी ने सोते से जगाया और अपने उपदेश में कहा कि "देखो! देश की क्या दुर्दशा हो रही है। दासता की बेड़ियों में देश जकड़ रहा है। धर्म और मन्दिर आदि नष्ट किये जारहे हैं। इज्ज़त हुर्मत सब मिट्टी में मिलाई जारही है। बहू बेटियां छीनी जाती हैं। हज़ारों हिन्दू ज़बरदस्ती मुसलमान बनाये जाते हैं।

* नोट—केश के साथ कंघा और कृपाण के साथ लोह का कड़ा। यों पांच वस्तुएँ प्रत्येक ख़ालसा सिक्ख को रखना अनिवार्य हैं।

जो मुसलमान नहीं बनते वे मार दिये जाते हैं। क्या यह जीना है? ऐसे जीने से तो मरना ही अच्छा। मैंने यह ख़ालसा पंथ चलाया है, यह धर्म की असली सूरत है। इससे रूहानी ताक़त क़ायम रहकर देश में से दुष्टों का बल घटता चला जायगा। यह निर्भय वीर मण्डली देश को ऊंचा उठाएगी। जागो राजाओ! जागो! आवो नया जन्म लो!" इत्यादि अमृत वचन कहे। परन्तु कुछेक ने हिम्मत की वाकी बादशाह के कोप से डर गये, बादशाही ज़ुल्म बहुत ज़ोर पर था।

बहुत से अच्छे अच्छे लोग गुरुजी के अनुयायी होते चले गये। काशी के राघोबा का पुत्र और उसकी कवित्री स्त्री और ग़ज़नी के आलिम मुंशी नंदलाल जो शाहज़ादा मुअज्ज़म के मीरमुंशी थे जिन्होंने गुरुजी की स्तुति में "बंदगीनामा" बनाया और उनका दीवान (काव्य संग्रह) "दीवाने गोया" कहाता है। इत्यादि।

परन्तु कुछ पहाड़ी राजा गुरुजी से डाह रखते ले। आनन्दपुर पर उनका मुगल सेना सहित धावा हुआ। उसमें राजा परास्त हुए और भाग गये। गुरुजी की विजय हुई। इसमें गुरु जी के हाथ से वीर पैंदेखाँ मारा गया और बहुत से वीर ख़त्म होगये।

राजा लोग फिर गुरुजी पर चढ़ आये। इस युद्ध में राजा केसरीचंद आदि मारे गये और फिर गुरु जी विजयी हुए। यह युद्ध सं० १७५८ में हुआ था।

हार पर हार होने पर राजाओं ने सरहिंद के नवाब को कुछ दे दिवाकर उसे गुरुजी पर चढ़ा लाये। "निर्मोह" के मुकाम पर वह भी हार कर लौट गया और गुरुजी से संधि कर ली।

जब गुरुजी कुरुक्षेत्र की यात्रा को गये तब रास्ते में पाँच हज़ार मुग़ल सेना को धन देकर गुरुजी पर गुप्त रूप से पहाड़ी राजा चढ़ा लाये। परन्तु शाही सेना का एक सरदार "सैदबेग़" तो गुरुजी का सेवक होगया और उलटा अपनी ही सेना से लड़ा और दूसरा सरदार "अलिफ़ख़ाँ" भाग निकला। गुरुजी ने पहले से अपनी भी एक गुप्त सेना इनकी चालाकी को रोकने को तयार कर रक्खी थी। उसही से विजयी हुए।

जब गुरुगोविंदसिंह किसी तरह भी नहीं दबे तो सब पहाड़ी राजाओं ने अपनी तरफ़ से राजा अजमेरी चन्द को दक्षिण में बादशाह औरंगज़ेब के पास अर्ज़ी सहित भेजा और गुरुजी की भरपेट शिकायतैं की गईं। बादशाह ने कोप करके दस हज़ार फ़ौज तो वहां से भेजी और सरहिंद के नवाब को हुक्म भेजा कि गोविंदसिंह को गिरिफ़्तार करके शाही दर्बार में रवाना करै। गुरुजी ने भी सब तरह से खूब तयारी की थी। आनन्दपुर में बड़ी भारी लड़ाई हुई। राजा हरिचन्द मारा गया। फ़ौज का अफ़सर सय्यदखां गुरुजी का चेला होकर बन में भाग गया। अजमेरी चंद घायल हुआ और उसका मुसाहिब मारा गया। और बहुत मुग़ल सेना और राजाओं की फ़ौज मारी गई। बिना अफ़सर की फ़ौज होजाने से शाही फ़ौज भाग छूटी। गुरुजी की यह बड़ी भारी फ़तह हुई।

बादशाह ने अति कुपित होकर अब पंजाब देश के सब सूबों, नव्वाबों और राजाओं के नाम हुक्म भेजे कि गोविन्दसिंह और आनन्दपुर पर इकबारगी चढ़ाई करदें। यदि गोविन्दसिंह को बिना मारे लौटेंगे तो सख्त सज़ा दी जायगी। फिर

क्या था, अगणित सेना आनन्दपुर पर चढ़ दौड़ी। सं० १७६१ में महा घोर यह युद्ध हुआ। गुरुजी ने बड़ी चतुराई के साथ इस समुद्र समान सेना से युद्ध किया। हजारों ही मारे गये। जब लड़ाई से नहीं जीते तो घेरा डाले रहे। बादशाह ने कई लाख फौज और भेज दी। बहुत अर्से तक घेरा पड़ा रहा। गुरुजी का सामान रसद बीतने पर आगया। यह जानकर मुग़लसेना नायकों ने इनको दूत भेज भेजकर कहलाया कि बिना शस्त्र बाहर निकलजाओ हम कुछ नहीं कहैंगे। जब कुछ सिक्ख घबराकर बाहर निकले तो उनको मारा और लूट लिया। यों बेईमानी होने लगी। उधर औरंगजेब का गुरुजी के नाम कसम धरम का पत्र आया कि मेरे पास आजाओ और लड़ाई बन्दकरदो। परन्तु गुरुजी इनकी बदनीयती को समझे हुए थे, इनकार लिख भेजा। परन्तु किले के सब सिक्ख भूख से तंग आगये थे। तब लाचार पौष सं० १७६१ की रात को किला छोड़ सब सेना सहित गुरुजी बाहर निकले। मुग़लसेना ने क़सम धरम तोड़ इन पर धावा किया। लड़ते भिड़ते सरसानदी को पार किया परन्तु सामान के सहित कई मणभार ग्रन्थ भी डूब गये। "रोपड़" स्थान में पठानों ने इन पर वार किया। गड़बड़ी में गुरु माता और दोनों छोटे साहिबाज़दे बिछुड़कर सरहिंद की ओर चले गये और गुरुपत्नी दिल्ली की तरफ सिक्खों सहित चली गई। और गुरुजी कुछ सेना (४० सिक्खों) और दोनों बड़े साहिबज़ादों सहित चमकोर गांव में एक चौधरी की हवेली में जा घुसे।

शाही फौज ने चमकोर को भी आघेरा। युद्ध यहां भी होने लगा। बारूद, गोली, तीर, तुफंग की खब कमी आने

लगी। तब सिक्ख बाहर निकल निकलकर लड़ने लगे। जोश में आकर दोनों बड़े साहिबजादे—अजीतसिंह और जोरावरसिंह—भी बारी बारी बाहरनिकलकर १० सिक्खों सहित मुग़लों से सैकड़ों को मार कर शहीद हुए। और यों देश और धर्म पर बलिहुए! गुरुजी के पास अब केवल दश सिक्ख रह चुके थे। तीन रात और तीन दिन बड़े कष्ट से बिताकर चौथी रात को,सिक्खों के पूर्ण आग्रह से, गुरुजी हवेली के पीछे से बाहर निकलकर तीन सिक्खों सहित दक्षिण की तरफ़ चले गये। और माछीवाड़े में पहुँच गये। बड़े ही कष्ट और तकलीफ़ें भोगते हुए बचकर यहाँ आपहुँचे। शाहीसेना ढूंढने में चारों तरफ़ लगीहुई थी। दो भक्त मुसलमान सोदागरों की सहायता से, फ़क़ीरी वेश में "जगराम" गाँव में पहुँचगये। यहीं अपने दोनों छोटे बेटों (जुझारसिंह और फतहसिंह) के सरहिंद के नवाब और उसके दुष्ट मुसाहिब सुच्चानन्द के जुल्म से बहुत निर्दयता से मारे जाने और मातागूजरी के उनके दुःख से शरीर त्यागने के प्राण घातक समाचार मिले थे। ये दोनों बालक-वीर धर्म पर खूब आरूढ़ रहे और धर्म के लिए बलि होने में नहीं डरे। इनकी भी संसार में अमरकीर्ति सदा के लिए रह गई! फिर गुरुजी "दीना" गाँव में आगये। यहीं पर बादशाह औरंगज़ेब का एक ख़ास रुक्का इनके नाम आया जिसमें इनको अपने पास बुलाने का निहोरा था। इसी का उत्तर जो गुरु जी ने फ़ारसी छन्दों में भेजा उसही को "ज़फ़र नामा" (विजय का पत्र) कहते हैं और जो सिक्ख इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है। क्योंकि इसके पढ़ने पर उस ज़ालिम बादशाह का बदी की तरफ़ से मन फिर गया था और वह

अपने किये पर पछताने लगा था। और कहते हैं कि इसही मनःक्लेश से उसका प्राणांत होगया था !

गुरु जी कई गांवों में ठहरते और लड़ाई झगड़ों आदि की कठिनाइयां झेलते हुए रियासत पटियाले के गाँव "तलवंडी" में आगये और यहाँ निरापद ठहरगये। इसही को पीछे "दक्षिण का आनन्दपुर" नाम से विख्यात किया और उसको "दमदमा" भी प्रसिद्ध किया। यहां से भटिंडे के किले को देखने गये, यहां से लौटकर उक्त दमदमे में अपनी याद से सारे "ग्रंथसाहिब" को ज़बानी लिखवादिया! यह भी एक अचरज ही था!॥ यही "दमदमे वाली बीड़" कहाती है, और इसही को अपने अन्त समय में गुरु जी ने गुरुआई की गद्दी भेंट की थी। यह प्रति ९ महीने और ९ दिन में लिखी जा चुकी थी यह प्रति मिती आसोज वदि प्रतिपदा १ संवत् वि० १७६२ में लिखनी आरंभ हुई थी। और ९ महीने ९ दिन में लिखी जाचुकी थी।

औरंगज़ेब के मरजाने पर उसके शाहज़ादों में तख़्त के लिए बखेड़ा हुआ। मुअज़्ज़म (बहादुरशाह) ने मुं०नन्दलाल की मारफ़त गुरु गोविन्दसिंह जी की सहायता और सलाह ली। जिसका परिणाम उसका बादशाह होना है।

फिर गुरु जी दक्षिण देश की तरफ़ चले। रास्ते में "नंदेड" गाँव में एक माधोदास वैष्णव साधु इनका शिष्य होगया और यही पीछे से वह "बन्दा बहादुर" सिक्खनेता और योद्धा इतिहास में प्रसिद्ध हुआ जिसने सरहिंद के नवाब और उसके परिवार को तथा सुच्चानंद आदि को दुर्दशा के साथ मारकर, सरहिंद को मिस्मार कर और लूटमार करके उन

छोटे साहबजादों का भली भांति बदला लिया। यही वंदा कुछ वर्षों तक पंजाब और पहाड़ी मुल्क में एक बड़ी शक्ति बना रहा जिस पर दो बेर बादशाह स्वयम् चढ़कर गया तब भी वह वश में नहीं आया। यह वंदाबहादुर सिक्ख-इतिहास-लेखकों में शिवाजी कीसी योग्यता रखने वाला माना गया है।

गुरु जी को बादशाह बहादुरशाह ने दक्षिण की मुहिम में साथ रहने को कहा। कुछ अर्से तक पीछे पीछे सेना सहित साथ रहे। बुरहान पुर आदि स्थानों से पूना जापहुँचे पूना से "नंदेड़" स्थान में गये जो हैदराबाद की रियासत में गोदावरी नदी के तट पर बसा है। यहां गुरु जी श्रावण सं० १७६४ में पहुँचे थे। इसको बहुत पसन्द किया और यहीं टिकेरहे। यहां पर बादशाह भी इनसे मिलने आजायाकरताथा। यह भूमि गुरुजी को बादशाह ने इनायत करदी। यहां कई स्थान—शिकार घाट, नगीनाघाट, संगतसाहिब—उनकी यादगार के साथ विद्यमान हैं। इस गांव का नाम "अविचल नगर" रक्खा था।

यहां रहते रहते अब गुरु जी को अपनी दिव्य दृष्टि से अपना अंत समय आता दिखाई दिया। गुरु जी ने बादशाह को कहा था कि सरहिंद के नव्वाब को उसके महापापाचार निर्दय कर्म (दोनों छोटे साहिबजादों को कत्ल करा देने के) की सज़ा देने को उनके सुपुर्द करदे। उसके लिए एक वर्ष की मीयाद बादशाह ने चाही थी। इस बात को सुनकर उक्त नव्वाब ने कुछ मन चले पठानों को गुरुजी के बध के लिए भेजा था। वे पठान चालाकी से गुरुजी के भक्त बनगये और उनकी सेवा में रहकर उपयुक्त मौका देखते ताकते रहे। मि० भादों बदि ४ सं० वि० १७६५ की संध्या के समय उक्त पठानों में से एक

ने गुरुजी को अकेला पलंग पर लेटे हुए पाकर जमधर उनके पेट में भोंक दिया। दूसरा बार न करने पाया था कि गुरुजी ने फुर्ती से उसे तलवार से मार गिराया। शोर सुनकर बाहर सिक्खों ने उसके साथियों को काट डाला। घाव पर टांके व पट्टी की गई। बादशाह ने सुनते ही अच्छे अच्छे जर्राह भेजे। १५-१६ दिन में घाव भर आया था। गुरु जी ने स्नान करके दरबार किया। बादशाह की भेंट कीहुई कमान को खैंचने में घावके टाँके टूट गये जिनका फिर भरना असंभव हो गया। गुरुजी ने अब अपना अंत समय निकट आया जान उत्तम फौजी पोशाक और शस्त्रों को धारण कर दरबार किया। उसमें स्पष्ट आपने अकाल लोक की यात्रा का सम्वाद कहकर बहुत से उपदेश अपने प्यारे सिक्खों को दिये। उनमें यहभी कहा कि " मेरे पीछे कोई सिक्ख गुरु नहीं होगा केवल गुरुवाणी ग्रन्थ साहिब ही गुरु होंगे। ग्रंथ साहिब ही खालसा का रक्षक और अगुआ रहेगा। दसों गुरुओं की ज्योति 'खालसा' में प्रवेश करता हूँ "। इत्यादि। फिर प्राचीन प्रथा के अनुसार पांच पैसे और एक नारियल ग्रन्थ साहिब के सामने धरकर ऊंची आवाज में यह वाणी कही:

> आज्ञा भई अकाल की, तभी चलायो पंथ।
> सब सिक्खन को हुकम है, गुरू मानियहु ग्रन्थ ॥१॥
> गुरू ग्रन्थजी मानियहु, प्रगट गुरों की देह।
> जाका हिरदा शुद्ध है, खोज शब्द में लेह ॥२॥

फिर अपने कुम्मेत घोड़े पर सवार हो रवाना होकर अन्तर्धान हो गये। यों गुरु गोविन्दसिंह जी ने अपनी संसारयात्रा पूरी करके, सिक्खजाति को "खालसा" बनाकर सुदृढ़ बुनियाद

पर क़ायम करके, मि० काती सुदि ५ बृहस्पतिवार सं १७६५ के दिन वे अपने प्यारे "सचखंड" (सत्य लोक) को सिधार गये !!! और इस संसार में अपनी अटल अमर कीर्त्ति छोड़ गये। यहीं (नंदेड़ में) अब उसही स्थान पर एक बड़ी भारी आलीशान इमारत गुरद्वारे के नाम से बनी हुई है। सिक्खों का यह तीर्थराज है जहां हजारों यात्री आते हैं और वहां अच्छा प्रबन्ध सिक्खों की तरफ़ से सदा रहता है। यह मंदिर महाराजा रणजीतसिंह जी ने सन् १८३२ ईसवी (सं० वि० १८८९) में बनवाया था और फिर अन्य सिक्खों ने कई इमारतें यहां बनवादी थीं। यह नंदेड़ (अविचल नगर) स्थान हैदराबाद से ७५ मील उत्तर-पश्चिम को झुकता हुआ नदी तट पर विद्यमान है।

यह वृत्तांत गुरुजी की जीवनी की लीलाओं का अतिसंक्षिप्त सारमात्र है। जिसको विस्तृत जीवन चरित्र देखना अभीप्सित हो उन्हें सरदार जसवंतसिंहजी एम० ए०, बी० एस-सी० लिखित— "श्रीगुरु गोविंदसिंहजी" को पढ़ना चाहिए जिससे यह सार धन्यवाद पूर्वक लिया गया है।

जयपुर। मि० श्रा० शु० १५ सं० १९९२ वि०	पुरोहित हरिनारायण, (बी० ए०—विद्याभूषण)

विषय सूची।

पृष्ठ संख्या

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी

आवति कुदावति कुरंग ज्यों तुरंग को ।

१ ओंकार सतिगुर प्रसादि ।

❋ जापु ❋

छपै छन्द—त्वप्रसादि ।

चक्र चिह्न अरु बरन जात अरु पात नहिन जिह ।
रूप रंग अरु रेख भेख कोऊ कहि न सकति किह ॥
अचल मूरति अनभउ प्रकास अमितोज कहिज्जै ।
कोटि इन्द्र इन्द्राणि साहि साहाणि गणिज्जै ॥
त्रिभवण महीप सुर नर असुर नेत नेत बन त्रिण कहत ।
त्व सरबनाम कथै कवन करम नाम बरणत सुमत ॥ १ ॥

भुजङ्ग प्रयात छन्द —त्वप्रसादि ।

नमस्त्वं अकाले । नमस्त्वं कृपाले ॥
नमस्त्वं अरूपे । नमस्त्वं अनूपे ॥ २ ॥
नमस्तं अभेखे । नमस्तं अलेखे ॥
नमस्तं अकाए । नमस्तं अजाए ॥ ३ ॥
नमो सर्ब काले । नमो सर्ब दिआले ॥
नमो सर्ब रूपे । नमो सर्ब भूपे ॥ १६ ॥
नमो काल काले । नमस्तस्त दिआले ॥
नमस्तं अबरने । नमस्तं अमरने ॥ २३ ॥
नमो सर्ब सोखं । नमो सर्ब पोखं ॥
नमो सर्ब करता । नमो सर्ब हरता ॥ २७ ॥

चाचरी छन्द—त्वप्रसादि ।

अरूप हैं । अनूप हैं ॥ अजू हैं । अभू हैं ॥ २९ ॥
अलेख हैं । अभेख हैं ॥ अनाम हैं । अकाम हैं ॥ ३० ॥

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी

आवति कुदावति कुरंग ज्यों तुरंग को ।

१ ओंकार सतिगुरु प्रसादि ।

❁ जापु ❁

छपै छन्द—त्वप्रसादि ।

चक्र चिह्न अरु बरन जात अरु पात नहिन जिह ।
रूप रंग अरु रेख भेख कोऊ कहि न सकति किह ॥
अचल मूरति अनभउ प्रकास अमितोज कहिज्जै ।
कोटि इन्द्र इन्द्राणि साहि साहाणि गणिज्जै ॥
त्रिभवण महीप सुर नर असुर नेत नेत बन त्रिण कहत ।
त्व सरबनाम कथै कवन करम नाम बरणत सुमत ॥ १ ॥

भुजङ्ग प्रयात छन्द —त्वप्रसादि ।

नमस्त्वं अकाले । नमस्त्वं कृपाले ॥
नमस्त्वं अरूपे । नमस्त्वं अनूपे ॥ २ ॥
नमस्तं अभेखे । नमस्तं अलेखे ॥
नमस्तं अकाए । नमस्तं अजाए ॥ ३ ॥
नमो सर्ब काले । नमो सर्ब दिआले ॥
नमो सर्ब रूपे । नमो सर्ब भूपे ॥ १६ ॥
नमो काल काले । नमस्तस्त दिआले ॥
नमस्तं अबरने । नमस्तं अमरने ॥ २३ ॥
नमो सर्ब सोखं । नमो सर्ब पोखं ॥
नमो सर्ब करता । नमो सर्ब हरता ॥ २७ ॥

चाचरी छन्द—त्वप्रसादि ।

अरूप हैं । अनूप हैं ॥ अजू हैं । अभू हैं ॥ २९ ॥
अलेख हैं । अभेख हैं ॥ अनाम हैं । अकाम हैं ॥ ३० ॥

अघे हैं । अभे हैं ॥ अजीत हैं । अभीत हैं ॥ ३१ ॥
त्रिमान हैं । निधान हैं ॥ त्रिबर्ग हैं । असर्ग हैं ॥ ३२ ॥
अनील हैं । अनाद हैं ॥ अजेय हैं । अजादि हैं ॥ ३३ ॥
अजन्म हैं । अबर्न हैं ॥ अभूत हैं । अभर्न हैं ॥ ३४ ॥
अगंज हैं । अभंज हैं ॥ अझूझ हैं । अझंझ हैं ॥ ३५ ॥
अमीक हैं । रफीक हैं ॥ अधंध हैं । अबंध हैं ॥ ३६ ॥
नृबूझ हैं । असूझ हैं ॥ अकाल हैं । अजाल हैं ॥ ३७ ॥
अलाह हैं । अजाह हैं ॥ अनन्त हैं । महन्त हैं ॥ ३८ ॥
अलीक हैं । नृस्रीक हैं ॥ नृलम्भ हैं । असम्भ हैं ॥ ३९ ॥
अगम्म हैं । अजम्म हैं ॥ अभूत हैं । अछूत हैं ॥ ४० ॥
अलोक हैं । असोक हैं ॥ अकर्म हैं । अभर्म हैं ॥ ४१ ॥
अजीत हैं । अभीत हैं ॥ अबाह हैं । अगाह हैं ॥ ४२ ॥
अमान हैं । निधान हैं ॥ अनेक हैं । फिर एक हैं ॥ ४३ ॥

चरपट छन्द—त्वप्रसादि ।

अम्मृत कर्म्मे । अम्मृत धर्म्मे ॥
अखल्ल जोगे । अचल्ल भोगे ॥ ७४ ॥
अचल्ल राजे । अटल्ल साजे ॥
अखल्ल धर्मं । अलक्ख कर्मं ॥ ७५ ॥
सर्बं दाता । सर्बं ग्याता ॥
सर्बं भाने । सर्बं माने ॥ ७६ ॥
सर्बं प्राणं । सर्बं त्राणं ॥
सर्बं भुगता । सर्बं जुगता ॥ ७७ ॥
सर्बं देवं । सर्बं भेवं ॥
सर्बं काले । सर्बं पाले ॥ ७८ ॥

मधुमार छन्द—त्वप्रसादि ।

गुन गन उदार । महिमा अपार ॥
आसन अभंग । उपमा अनंग ॥ ८७ ॥
अनभउ प्रकास । निसदिन अनास ॥
आजान बाहु । साहान साहु ॥ ८८ ॥
मुनि मनि प्रनाम । गुन गन मुदाम ॥
अरवर अगंज । हरि नर प्रभंज ॥ १६० ॥
ओङ्कार आदि । कथनी अनादि ॥
खल खंड ख्याल । गुर बर अकाल ॥ १६६ ॥

हरिबोलमना छन्द—त्वप्रसादि ।

करणालय हैं । अर घालय हैं ॥
खल खंडन हैं । महि मंडन हैं ॥ १७० ॥
जगतेस्वर हैं । परमेस्वर हैं ॥
कलिकारन हैं । सर्ब उबारन हैं ॥ १७१ ॥
बिस्वंभर हैं । करुणालय हैं ॥
नृप नाइक हैं । सर्ब पाइक हैं ॥ १८० ॥
परमातम हैं । सरबातम हैं ॥
आतम बस हैं । जस के जस हैं ॥ १८३ ॥

एक अच्छरी छन्द ।

अजै । अलै ॥ अभै । अबै ॥ १८८ ॥
अभू । अजू ॥ अनास । अकास ॥ १८६ ॥
अगंज । अभंज ॥ अलक्ख । अभक्ख ॥ १६० ॥
अकाल । दिआल ॥ अलेख । अभेख ॥ १६१ ॥

अनाम । अकाम ॥ अगाह । अढाह ॥ १६२ ॥
अनाथे । प्रमाथे ॥ अजोनी । अमोनी ॥ १६३ ॥
नरागे । नरंगे ॥ नरूपे । नरेखे ॥ १६४ ॥
अकरमं । अभरमं ॥ अगंजे । अलेखे ॥ १६५ ॥

भुजंग प्रयात छन्द ।

नमस्तुल प्रनामे समस्तुल प्रणासे ।
अगंजुल अनामे समस्तुल निवासे ॥
निर्कामं बिभूते समस्तुल सरूपे ।
कुकर्मं प्रणासी सुधर्मं बिभूते ॥ १६६ ॥
सदा सच्चदानन्द सत्रं प्रणासी ।
करीमुल कुनिन्दा समस्तुल निवासी ॥
अजाइब बिभूते गजाइब गनीमे ।
हरीअं करीअं करीमुल रहीमे ॥ १६७ ॥
चत्र चक्र वर्ती चत्र चक्र भुगते ।
सुयंभव सुभं सर्बदा सर्ब जुगते ॥
दुकालं प्रणासी दयालं सरूपे ।
सदा अंग संगे अभंगं बिभूते ॥ १६८ ॥

---

१ ओंकार सतिगुरु प्रसादि ।

❀ अकाल स्तुति ❀

त्वप्रसादि—चौपई ।

प्रणवो आदि एकंकारा ।
जल थल महीअल कियो पसारा ॥

आदि पुरख अबगत अबिनासी।
लोक चतुर्दस जोति प्रकासी ॥ १ ॥
हस्त कीट के बीच समाना।
राव रंक जिह इक सर जाना ॥
अद्वै अलख पुरख अबिगामी।
सब घट घट के अन्तरजामी ॥ २ ॥
अलख रूप अद्वै अनभेखा।
राग रंग जिह रूप न रेखा ॥
बर्न चिह्न सभ हूँ ते न्यारा।
आदि पुरख अद्वै अविकारा ॥ ३ ॥
बर्न चिह्न जिह जात न पाता।
सत्र मित्र जिह तात न माता ॥
सभ ते दूरि सभन ते नेरा।
जल थल महीअल जाहि बसेरा ॥ ४ ॥
अनहद रूप अनाहद बानी।
चरन सरन जिह बसत भवानी ॥
ब्रह्मा बिसन अन्तु नहीं पायो।
नेत नेत मुख चार बतायो ॥ ५ ॥
कोटि इन्द्र उपइन्द्र बनाए।
ब्रह्मा रुद्र उपाइ खपाए ॥
लोक चतुर्दस खेल रचायो।
बहुर आप ही बीच मिलायो ॥ ६ ॥
दानव देव फनिन्द अपारा।
गन्धर्व जच्छ रचे सुभचारा ॥

भूत भविख्य भवान कहानी।
घट घट के पट पट की जानी॥ ७॥

तात मात जिह जात न पाता।
एक रंग काहू नहीं राता॥
सरब जोत के बीच समाना।
सभहूँ सरब ठौर पहिचाना॥ ८॥

काल रहित अनकाल सरूपा।
अलख पुरख अबगत अवधूता॥
जात पात जिह चिह्न न बरना।
अबगत देव अछै अन भरमा॥ ९॥

सभ को काल सभन को करता।
रोग सोग दोखन को हरता॥
एक चित्त जिह इक छिन ध्यायो।
काल फास के बीच न आयो॥ १०॥

त्वप्रसदि—कवित्त।

कतहूँ सुचेत हुइकै चेतना को चार कीओ,
कतहूँ अचिन्त हुइकै सोवत अचेत हो।
कतहूँ भिखारी हुइकै माँगत फिरत भीख,
कहूँ महा दानि हुइकै माँगिओ धन देत हो॥
कहूँ महाँराजन को दीजत अनन्त दान,
कहूँ महाँराजन ते छीन छित लेत हो।
कहूँ बेद रीत कहूँ तासिउ बिपरीत,
कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुरगुन समेत हो॥ १॥११॥

कहूँ जच्छ गन्धर्ब उरग कहूँ बिद्याधर,
कहूँ भए किन्नर पिसाच कहूँ प्रेत हो।
कहूँ हुइकै हिन्दुआ गाइत्री को गुप्त जप्यो,
कहूँ हुइकै तुरका पुकारे बाँग देत हो॥
कहूँ कोक काब के पुरान को पढ़त मत,
कतहूँ कुरान को निदान जान लेत हो।
कहूँ बेद रीत कहूँ तासिउ बिपरीत,
कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुरगुन समेत हो॥ २॥१२॥

कहूँ देवतान के दिवान मैं बिराजमान,
कहूँ दानवान को गुमान मत देत हो।
कहूँ इन्द्र राजा को मिलत इन्द्र पदवी सी,
कहूँ इन्द्र पदवी छिपाइ छीन लेत हो॥
कतहूँ बिचार अबिचार को बिचारत हो,
कहूँ निजनार परनार के निकेत हो।
कहूँ बेद रीत कहूँ तासिउ बिपरीत,
कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुरगुन समेत हो॥ ३॥१३॥

कहूँ शस्त्र धारी कहूँ बिद्या के बिचारी,
कहूँ मारत अहारी कहूँ नार के निकेत हो।
कहूँ देव बानी कहूँ सारदा भवानी,
कहूँ मंगला मृड़ानी कहूँ स्याम कहूँ सेत हो॥
कहूँ धर्म धामी कहूँ सर्ब ठउर गामी,
कहूँ जती कहूँ कामी कहूँ देत कहूँ लेत हो।
कहूँ बेद रीत कहूँ तासिउ बिपरीत,
कहूँ त्रिगुन अतीत कहूँ सुरगुन समेत हो॥ ४॥१४॥

कहूँ जटाधारी कहूँ कंठी धरे ब्रह्मचारी,
कहुँ जोग साधी कहूँ साधना करत हो।
कहूँ कान फारे कहूँ डंडी हुइ पधारे,
कहूँ फूक फूक पावन को पृथी पै धरत हो॥
कतहूँ सिपाही हुइकै साधत सिलाहन कौ,
कहूँ छत्री हुइकै अर मारत मरत हो।
कहूँ भूम भार कौ उतारत हो महाराज,
कहूँ भव भतन की भावना भरत हो॥ ५ ॥१५॥

कहूँ गीतनाद के निदान कौ बतावत हो,
कहूँ नृतकारी चित्रकारी के निधान हो।
कतहूँ पयूख हुइकै पीवत पिवावत हो,
कतहूँ मयूख ऊख कहूँ मद पान हो॥
कहूँ महासूर हुइकै मारत मवासन कौ,
कहूँ महादेव देवतान के समान हो।
कहूँ महादीन कहूँ द्रव्य के अधीन,
कहूँ विद्या में प्रवीन कहूँ भूम कहूँ भान हो॥ ६ ॥१६॥

कहूँ अकलंक कहूँ मारत मयंक,
कहूँ पूरन प्रजंक कहूँ सुद्धता की सार हो।
कहूँ देव धर्म कहूँ साधना के हर्म,
कहूँ कुतस्त कुकर्म कहूँ धर्म के प्रकार हो॥
कहूँ पउनहारी कहूँ विद्या के विचारी,
कहूँ जोगी जती ब्रह्मचारी नर कहूँ नार हो।
कहूँ छत्र धारी कहूँ छाला धरे छैल भारी,
कहूँ छकवारी कहूँ छल के प्रकार हो॥ ७ ॥१७॥

कहूँ गीत के गवैया कहूँ बेन के बगैया,
कहूँ नृत के नचैया कहूँ नर को अकार हो ।
कहूँ बेद बानी कहूँ कोक की कहानी,
कहूँ राजा कहूँ रानी कहूँ नार के प्रकार हो ॥
कहूँ बेन के बजैया कहूँ धेन के चरैया,
कहूँ लाखन लवैया कहूँ सुन्दर कुमार हो ।
सुद्धता की सान हो कि सन्तन के प्रान हो कि,
दाता महादान हो कि निर्दोखी निरंकार हो ॥८॥१८॥

निरजुर निरूप हो कि सुन्दर सरूप हो,
कि भूपन के भूप हो कि दाता महा दान हो ।
प्रान के बचैया दूध पूत के दिवैया,
रोग सोग के मिटैया किधौं मानी महा मान हो ॥
बिद्या के बिचार हो कि अद्वै अवतार हो कि,
सिद्धता की सूरति हो कि सुद्धता का सान हो ।
जोबन के जाल हो कि काल हूँ के काल हो कि,
सत्रन के सूल हो कि मित्रन के प्रान हो ॥ ९ ॥१९॥

कहूँ ब्रह्मबाद कहूँ बिद्या को बिखाद,
कहूँ नाद को ननाद कहूँ पूरन भगत हो ।
कहूँ बेद रीत कहूँ बिद्या की प्रतीत,
कहूँ नीत अउ अनीत कहूँ ज्वाला सी जगत हो ॥
पूरन प्रताप कहूँ इकाती को जाप कहूँ,
ताप को अताप कहूँ जोग ते डिगत हो ।
कहूँ बर देत कहूँ छल सिउ छिनाइ लेत,
सर्ब काल सर्ब ठउर एक से लगत हो ॥ १० ॥२०॥

त्वप्रसादि—सवैये ।

स्रावग सुद्ध समूह सिधान के,
देखि फिरिओ घर जोग जती के।
सूर सुरा रदुन सुद्ध सुधादिक,
सन्त समूह अनेक मती के॥
सारे ही देस को देखि रह्यो,
मत कोऊ न देखियत प्रान पती के।
श्री भगवान की भाइ कृपा हू ते,
एक रती बिनु एक रती के॥ १॥

माते मतंग जरे जर संगि,
अनूप उतंग सुरंग सवारे।
कोट तुरंग कुरंग से कूदत,
पउन के गउन कउ जात निवारे॥
भारी भुजान के भूप भली बिधि,
निआवत सीस न जात बिचारे।
एते भए तो कहा भए भूपत,
अन्त को नागे ही पाइ पधारे॥ २॥

जीत फिरै सब देस दिसान को,
बाजत ढोल मृदंग नगारे।
गुंजत गूड़ गजान के सुन्दर,
हंसत ही हय राज हजारे॥
भूत भविख्य भवान के भूपत,
कउन गनै नही जात बिचारे।
श्री पत श्री भगवान भजे बिनु,
अन्त कउ अन्त के धाम सिधारे॥ ३॥

तीरथ नान दया दम दान,
सुसंजम नेम अनेक बिसेखै।
बेद पुरान कतेब कुरान,
जिमीन जमान सबान के पेखै॥
पउन अहार जती जत धार,
सबै सुबिचार हजारक देखै।
श्री भगवान भजे बिनु भूपति,
एक रती बिनु एक न लेखै॥ ४॥

सुद्ध सिपाह दुरन्त दुबाह,
सुसाजि सनाह दुर्जान दलैंगे।
भारी गुमान भरे मन मैं,
कर परवत पंख हले न हलैंगे॥
तोर अरीन मरोर मवासन,
माते मतंगन मान मलैंगे।
श्री पत श्री भगवान कृपा बिनु,
त्याग जहानु निदान चलैंगे॥ ५॥

बीर अपार बडे बरिआर,
अबिचारहिं सार की धार भछैया।
तोरत देस मलिन्द मवासन,
माते गजान के मान मलैया॥
गाढ़े गढ़ान के तोड़न हार,
सु बातन ही चक चार लवैया।
साहिब श्री सभ को सिर नाइक,
जाचिक अनेक सु एक दिवैया॥ ६॥

दानव देव फनिन्द निसाचर,
भूत भविख्य भवान जपैंगे।
जीव जिते जल मैं थल मैं,
पल ही पल मैं सभ थाप थपैंगे॥
पुन्न प्रतापन बाढ जैत धुन,
पापन के बहु पुञ्ज खपैंगे।
साध समूह प्रसन्न फिरैं जग,
सत्रु सभै अवलोक चपैंगे॥ ७॥

मानव इन्द्र गजिन्द्र नराधप,
जौन त्रिलोक को राजु करैंगे।
कोटि इस्नान गजादिक दान,
अनेक सुअम्बर साज बरैंगे॥
ब्रह्म महेसर बिसन सचीपत,
अन्त फसे जम फास परैंगे।
जे नर श्री पति के प्रस हैं पग,
ते नर फेर न देह धरैंगे॥ ८॥

कहा भयो जो दोऊ लोचन मूँद कै,
बैठि रह्यो बक ध्यान लगायो।
नात फिर्यो लीए सात समुद्रन,
लोक गयो परलोक गवायो॥
बासु कीओ बिखिआन सो बैठ कै,
ऐसे ही ऐस सुबैस बितायो।
साचु कहौं सुन लेहु सभै,
जिन प्रेमु कीओ तिनही प्रभु पायो॥ ९॥

काहूँ लै पाहन पूज धर्यो सिर,
काहूँ लै लिंगु गरे लटकायो।
काहूँ लखिओ हरि अवाची दिसा महि,
काहूँ पछाह को सीस निवायो॥
कोऊ बुतान कौ पूजत है पसु,
कोऊ मृतान कौ पूजन धायो।
कूर क्रिया उरझयो सभ ही जगु,
श्री भगवान को भेदु न पायो॥१०॥३०॥

त्वप्रसादि—तोमर छन्द।

हरि जन्म मरन बिहीन। दस चार चार प्रबीन॥
अकलंक रूप अपार। अनछिज्ज तेज उदार॥ १ ॥३१॥
अनभिज्ज रूप दुरन्त। सभ जगत भगत महन्त॥
जस तिलक भूभृत भान। दस चार चार निधान॥ २ ॥३२॥
जिह अंड ते ब्रहमण्ड। कीने सुचौदह खण्ड॥
सभ कीन जगत पसार। अव्यक्त रूप उदार॥ ७ ॥३७॥
जिह कोटि इन्द्र नृपार। कई ब्रह्म बिसन बिचार॥
कई राम कृसन रसूल। बिनु भगत को न क़बूल॥ ८ ॥३८॥
कई सिन्ध बिन्ध नगिन्द्र। कई मच्छ कच्छ फनिन्द्र॥
कई देव आदि कुमार। कई कृसन बिसन अवतार॥ ६ ॥३६॥
कई इन्द्र बार बुहार। कई बेद अउ मुख चार॥
कई रुद्र छुद्र सरूप। कई राम कृसन अनूप॥१०॥४०॥
कई कोक काब भणन्त। कई बेद भेद कहन्त॥
कई सास्त्र सिम्रिति बखान। कहूँ कथत ही सु पुरान॥११॥४१॥

कई ब्रह्म वेद रटन्त । कई सेख नाम उचरन्त ॥
बैराग कहूँ सन्यास । कहूँ फिरत रूप उदास ॥१९॥४९॥
सभ करम फोकट जान । सभ धरम निहफल मान ॥
बिन एक नाम अधार । सभ कर्म भर्म बिचार ॥२०॥५०॥

त्वप्रसादि—लघुनिराज छन्द ।

जले हरी । थले हरी ॥ उरे हरी । बने हरी ॥ १ ॥
गिरे हरी । गुफे हरी ॥ छिते हरी । नभे हरी ॥ २ ॥
ईहाँ हरी । ऊहाँ हरी ॥ जिमीं हरी । जमाँ हरी ॥ ३ ॥
अलेख हरी । अभेख हरी ॥ अदोख हरी । अद्वैख हरी ॥ ४ ॥
अकाल हरी । अपाल हरी ॥ अछेद हरी । अभेद हरी ॥ ५ ॥
अजंत्र हरी । अमंत्र हरी ॥ सुतेज हरी । अतंत्र हरी ॥ ६ ॥
अजात हरी । अपात हरी ॥ अमित्र हरी । अमात हरी ॥ ७ ॥
अरोग हरी । असोक हरी ॥ अभर्म हरी । अकर्म हरी ॥ ८ ॥
अजै हरी । अभै हरी ॥ अभेद हरी । अछेद हरी ॥ ९ ॥
अखंड हरी । अभंड हरी ॥ अडंड हरी । प्रचंड हरी ॥१०॥
अतेव हरी । अभेव हरी ॥ अजेव हरी । अछेव हरी ॥११॥
भजो हरी । थपो हरी ॥ तपो हरी । जपो हरी ॥१२॥
जलस तुही । थलस तुही ॥ नदिस तुही । नदस तुही ॥१३॥
बृछस तुही । पतस तुही ॥ छितस तुही । उर्धस तुही ॥१४॥
भजस तुअं । भजस तुअं ॥ रटस तुअं । ठटस तुअं ॥१५॥
ज़िमी तुही । ज़माँ तुही ॥ मकी तुही । मकाँ तुही ॥१६॥
अभू तुही । अभै तुही ॥ अछू तुही । अछै तुही ॥१७॥
जतस तुही । ब्रतस तुही ॥ गतस तुही । मतस तुही ॥१८॥
तुही तुही । तुही तुही ॥ तुही तुही । तुही तुही ॥१९॥
तुही तुही । तुही तुही ॥ तुही तुही । तुही तुही ॥२०॥७०॥

त्वप्रसादि—कवित्त ।

खूक मलहारी गज गदहा विभूत धारी,
गिदुआ मसान बास करिओई करत है ।
घुग्घू मटवासी लगे डोलत उदासी,
मृग तरवर सदीव मौन साधेई मरत है ॥
बिन्द के सधैया ताहि हीज की बडैया देत,
बन्दरा सदीव पाइ नागेई फिरत है ।
अंगना अधीन काम क्रोध मैं प्रबीन,
एक ज्ञान के बिहीन छीन कैसे कै तरत है ॥ १ ॥७१॥
भूत बनचारी छिब छउना सबै दूधा धारी,
पउन के अहारी सुभुजंग जानियतु है ।
तृण के भछैया धन लोभ के तजैया,
तेतो गऊअन के जैया बृखभैया मानियतु है ॥
नभ के उडैया ताहि पंछी की बडैया देत,
बगुला बिड़ाल बृक ध्यानी ठानियतु है ।
जेतें बडे ज्ञानी तिनो जानी पै बखानी नाहि,
ऐसे न प्रपंच मन भूल आनियतु है ॥ २ ॥७२॥
भूम के बसैया ताहि भूचरी के जैया कहै,
नभ के उडैया सो चिरैया कै बखानियै ।
फल के भछैया ताहि बाँदरी के जैया कहैं,
आदिस फिरैया तेतो भूत कै पछानियैं ॥
जल के तरैया को गंगेरी सी कहत जग,
आग के भछैया सो चकोर सम मानियै ।
सूरज सिवैया ताहि कउल की बडाई देत,
चन्द्रमा सिवैया कौ कवी कै पहिचानियै ॥ ३ ॥७३॥

नाराइण कच्छ मच्छ तिन्दुआ कहत सभ,
कउल नाभ कउल जिह ताल मैं रहतु है।
गोपीनाथ गूजर गुपाल सबै धेनुचारी,
रिखी केस नाम कै महन्त लहियतु है॥
माधव भवर औ अटेरू को कन्हैया नाम,
कंस को बधैया जमदूत कहियतु है।
मूढ़ रूढ़ पीटत न गूढ़ता को भेद पावै,
पूजत न ताहि जाके राखे रहियतु है॥ ४ ॥७४॥

बिस्वपाल जगत काल दीन दिआल बैरी साल,
सदा प्रतिपाल जमजाल ते रहत है।
जोगी जटाधारी सती साचे बडे ब्रह्मचारी,
ध्यान काज भूख प्यास देह पै सहत है॥
निउली करम जल होम पावक पवन होम,
अधो मुख एक पाइ ठाढे न वहत है।
मानव फनिन्द देव दानव न पावै भेद,
वेद औ कतेब नेत नेत कै कहत है॥ ५ ॥७५॥

नाचत फिरत मोर बादर करत घोर,
दामनी अनेक भाउ करिओई करत है।
चन्द्रमा ते सीतल न सूरज ते तपत तेज,
इन्द्र सो न राजा भव भूम को भरत है॥
सिव से तपस्वी आदि ब्रह्मा से न वेद चारी,
सनत कुमार सी तपस्या न अनत है।
ज्ञान के विहीन काल फास के अधीन सदा,
जुगन की चउकरी फिराएई फिरत है॥ ६ ॥७६॥

एक शिव भए एक गए एक फेर भए,
रामचन्द्र कृष्न के अवतार भी अनेक हैं।
ब्रह्मा अरु बिसन केते बेद औ पुरान केते,
सिमृति समूहन कै हुइ हुइ बितए हैं॥
मौनदी मदार केते असुनी कुमार केते,
अंसा अवितार केते काल बस भए हैं।
पीर औ पिकाँबर केते गने न परत एते,
भूम ही ते हुइ कै फेरि भूमि ही मिलए हैं॥ ७ ॥७७॥

जोगी जती ब्रह्मचारी बडे बडे छत्र धारी,
छत्र ही की छाया कई कोस लौं चलत है।
बडे बडे राजन के दावति फिरति देस,
बडे बडे राजनि के दर्प को दलत है॥
मान से महीप औ दिलीप कै से छत्र धारी,
बडो अभिमान भुजदण्ड को करत है।
दारा से दिलीसर द्रुजोधन से मान धारी,
भोग भोग भूम अन्त भूम मैं मिलत है॥ ८ ॥७८॥

सिजदे करे अनेक तोपची कपट भेस,
पोसती अनेकदा निवावत है सीस कौ।
कहा भयो मल्ल जौ पै काढत अनेक डंड,
सो तौ न डंडौत अष्टाँग अथतीस कौ॥
कहा भयो रोगी जो पै डार्यो रह्यो उर्ध मुख,
मन ते न मूँड निहरायो आद ईस कौ।
कामना अधीन सदा दामना प्रवीन,
एक भावना बिहीन कैसे पावै जगदीस कौ॥९॥७९॥

सीस पटकत जाके कान मैं खजूरा धसै,
मूँड छटकत मित्र पुत्र हूँ के सोक सौं।
आक को चरैया फल फूल को भछैया,
सदा बन को भ्रमैया अउर दूसरो न बोक सौं॥
कहा भयो भेड जो घसत सीस बृछन सौं,
माटी को भछैया बोल पूछ लीजै जोक सौं।
कामना अधीन काम क्रोध मैं प्रबीन,
एक भावना बिहीन कैसे भेटै परलोक सौं॥१०॥८०॥

नाचिओई करत मोर दादर करत सोर,
सदा घन घोर घन करिओई करत है।
एक पाइ ठाढे सदा बन मैं रहत बृच्छ,
फूक फूक पाव भूम स्रावग धरत है॥
पाहन अनेक जुग एक ठउर बासु करै,
काग अउर चील देस देस बिचरत है।
ज्ञान के बिहीन महादान मैं न हूजै लीन,
भावना बिहीन दीन कैसे कै तरत है॥११॥८१॥

जैसे एक स्वाँगी कहूँ जोगीआ बैरागी बनै,
कबहूँ सन्यास भेस बनकै दिखावई।
कहूँ पउनहारी कहूँ बैठे लाइ तारी,
कहूँ लोभ की खुमारी सौं अनेक गुन गावई॥
कहूँ ब्रह्मचारी कहूँ हाथ पै लगावै बारी,
कहूँ डंडधारी हुइकै लोगन भ्रमावई।
कामना अधीन परिओ नाचत है नाचन सों,
ज्ञान के बिहीन कैसे ब्रह्म लोक पावई॥१२॥८२॥

पञ्च बार गीदर पुकारे परे सीतकाल,
कुञ्चर औ गदहा अनेकदा पुकारही।
कहा भयो जो पै कलवत्र लीओ काँसी बीच,
चीर चीर चोरटा कुठारन सौं मार ही॥
कहा भयो फासी डार बूडिओ जड़ गंग धार,
डार डार फास ठग मार मार डारही।
डूबे नर्कधार मूढ़ ज्ञान के बिना बिचार,
भावना बिहीन कैसे ज्ञान को बिचार ही॥१३॥८३॥

ताप के सहे ते जो पै पाइऐ अताप नाथ,
तापना अनेक तन घाइल सहत है।
जाप के किए ते जो पै पायत अजाप देव,
पूदना सदीव तुही तुही उचरत है॥
नभ के उडे ते जो पै नाराइण पाइयत,
अनल अकास पंछी डोलबो करत है।
आग मैं जरे ते गत राँड की परत कर,
पताल के बासी किउँ भुजंग न तरत है॥१४॥८४॥

कोऊ भयो मुँडिया सन्यासी कोऊ जोगी भयो,
कोऊ ब्रह्मचारी कोऊ जतियन मानबो।
हिन्दू तुरक कोऊ राफजी इमाम साफी,
मानस की जात सबै एकै पहचानबो॥
करता करीम सोई राजक रहीम ओई,
दूसरो न भेद कोई भूल भ्रम मानबो।
एक ही की सेव सभ ही को गुरुदेव एक,
एक ही सरूप सबै एकै जोत न जानबो॥१५॥८५॥

देहरा मसीत सोई पूजा औ निवाज ओई,
मानस सबै एक पै अनेक को भ्रमाउ है।
देवता अदेव जच्छ गन्धर्व तुरक हिन्दू,
न्यारे न्यारे देसन के भेस को प्रभाउ है॥
एकै नैन एकै कान एकै देह एकै बान,
खाक बाद आतस औ आब को रलाउ है।
अल्लह अभेख सोई पुरान औ कुरान ओई
एक ही सरूप सबै एक ही बनाउ है॥१६॥८६॥

जैसे एक आग ते कनूका कोट आग उठे,
न्यारे न्यारे हुइकै फेरि आग मैं मिलाहिंगे।
जैसे एक धूर ते अनेक धूर पूरत है,
धूर के कनूका फेर धूर ही समाहिंगे॥
जैसे एक नद ते तरङ्ग कोट उपजत है,
पान के तरङ्ग सबै पान ही कहाहिंगे।
तैसे बिस्व रूप ते अभूत भूत प्रगट होइ,
ताही ते उपज सबै ताही मैं समाहिंगे॥१७॥८७॥

केते कच्छ मच्छ केते उन कउ करत भच्छ,
केते अच्छ वच्छ हुइ सपच्छ उड जाहिंगे।
केते नभ बीच अच्छ पच्छ कउ करैंगे भच्छ,
केतक प्रतच्छ हुइ पचाइ खाइ जाहिंगे॥
जल कहा थल कहा गगन के गउन कहा,
काल के बनाइ सबै काल ही चबाहिंगे।
तेज जिउँ अतेज मैं अतेज जैसे तेज लीन,
ताही ते उपज सबै ताही मैं समाहिंगे॥१८॥८८॥

कूकत फिरत केते रोवत मरत केते,
जल मैं डुबत केते आग मै जरत हैं।
केते गंग बासी केते मदीना मक्का निवासी,
केतक उदासी के भ्रमाएई फिरत हैं॥
करवत सहत केते भूम मैं गडत केते,
सूआ पै चढ़त केते दूख कउ भरत हैं।
गैन मैं उडत केते जल मैं रहत केते,
ज्ञान के विहीन जक जारेई मरत हैं॥१९॥८९॥
सोध हारे देवता बिरोध हारे दानो वडे,
बोध हारे बोधक प्रबोध हारे जापसी।
घस हारे चन्दन लगाइ हारे चोआ चार,
पूज हारे पाहन चढ़ाइ हारे लापसी॥
गाह हारे गोरन मनाइ हारे मड़ी मट्ट,
लीप हारे भीतन लगाइ हारे छापसी।
गाइ हारे गंधर्ब वजाइ हारे किन्नर सभ,
पच हारे पण्डत तपन्त हारे तापसी॥२०॥९०॥

त्वप्रसादि—भुजंग प्रयात छन्द।

न रागं न रंगं न रूपं न रेखं।
न मोहं न क्रोहं न द्रोहं न द्वैखं॥
न कर्मं न भर्मं न जन्मं न जातं।
न मित्रं न सत्रं न पित्रं न मातं॥१॥ ९१॥
न नेहं न गेहं न कामं न धामं।
न पुत्रं न मित्रं न सत्रं न भामं॥
अलेखं अभेखं अजोनी सरूपं।
सदा सिद्धदा बुद्धदा वृद्ध रूपं॥२॥ ९२॥

नहीं जान जाई कछू रूप रेखं।
कहा बास ताको फिरै कउन भेखं॥
कहा नाम ताको कहा कै कहावै।
कहा कै बखानो कहै मैं न आवै॥ २॥ ९२॥

किते कृष्न से कीट कोटै उपाए।
उसारे गढ़े फेरि मेटे बनाए॥
अगाधे अभै आदि अद्वै अबिनासी।
परेअंपरा परम पूरन प्रकासी॥ ६॥ ९६॥

न रूपं न भूपं न कायं न करमं।
न त्रासं न प्रासं न भेदं न भरमं॥
सदैवं सदा सिद्ध बृद्धं सरूपे।
नमो एक रूपे नमो एक रूपे॥ १२॥१०२॥

नृउक्तं प्रभा आदि अनुक्त प्रतापे।
अजुग्तं अछै आदि अविक्त अथापे॥
बिभुग्तं अछै आदि अच्छै सरूपे।
नमो एक रूपे नमो एक रूपे॥ १३॥१०३॥

न नेहं न गेहं न सोकं न साकं।
परेअं पवित्रं पुनीतं अताकं॥
न जातं न पातं न मित्रं न मंत्रे।
नमो एक तंत्रे नमो एक तंत्रे॥ १४॥१०४॥

न ध्रमं न भ्रमं न सर्मं न साके।
न ब्रमं न चर्मं न कर्मं न बाके॥
न सत्रं न मित्रं न पुत्रं सरूपे।
नमो आदि रूपे नमो आदि रूपे॥ १५॥१०५॥

कहूँ अच्छरा पच्छरा मच्छरा हो।
कहूँ बीर बिद्या अभूतं प्रभा हो॥
कहूँ छैल छाला धरे छत्र धारी।
कहूँ राज साजं धिराजाधिकारी॥ २६ ॥११६॥
नमो नाथ पूरे सदा सिद्ध दाता।
अछेदो अछै आदि अद्वै बिधाता॥
न त्रस्तं न ग्रस्तं समस्तं सरूपे।
नमस्तं नमस्तं तुअस्तं अभूते॥ ३० ॥१२०॥

त्वप्रसादि—पाधड़ी छन्द।

अब्यक्त तेज अनभउ प्रकास।
अच्छै सरूप अद्वै अनास॥
प्रकास तेज अनखुट भण्डार।
दाता दुरन्त सरबं प्रकार॥ १ ॥ १२१ ॥
कई नेह देह कई गेह वास।
कई भ्रमत देस देसन उदास॥
कई जल निवास कई अगन ताप।
कई जपत उर्ध लटकन्त जाप॥ १८ ॥१३८॥
कई जपत जोग कलपं प्रजन्त।
नहीं तदप तास पायत न अन्त॥
कई करत कोट बिद्या बिचार।
नही तदप द्रिष्ट देखे मुरार॥ १६ ॥१३६॥
बिन भगत सकत नहीं परत पान।
बहु करत होम अर जग्य दान॥
बिन एक नाम इक चित्त लीन।
फोकट सर्ब धर्मा बिहीन॥ २० ।१४०॥

त्वप्रसादि—तोटक छन्द ।

जै जम्पहु जुग्गण जूह जुअं ।
भै कम्पहु मेर पयाल भुअं ॥
तप तापस सर्ब जलेर थलं ।
धन उच्चरत इन्द्र कुमेर बलं ॥ १ ॥ १४१ ॥

अनखेद सरूप अभेद अभिअं ।
अनखण्ड अभूत अछेद अछिअं ॥
अनकाल अपाल दिआल असुअं ।
जिह ठटीअं मेर अकास भुअं ॥ २ ॥ १४२ ॥

जिह बेद पुरान कतेब जपै ।
सुत सिन्ध अधोमुख ताप तपै ॥
कई कलपन लौं तप ताप करै ।
नहीं नैक कृपानिध पान परै ॥ १८ ॥ १५८ ॥

जिह फोकट धर्म सबै तजि हैं ।
इक चित्त कृपानिध को जप हैं ॥
तेऊ या भव सागर को तर हैं ।
भव भूल न देह पुनर धर हैं ॥ १६ ॥ १५६ ॥

इक नाम बिना नहिं कोट बृती ।
इम बेद उचारत सारसुती ॥
जेऊ वा रसके चसके रस हैं ।
तेऊ भूल न काल फधा फस हैं ॥ २० ॥ १६० ॥

त्वप्रसादि—नराज छन्द ।

अगंज आदि देव है अभंज भंज जानिऐ ।
अभूत भूत है सदा अगंज गंज मानिऐ ॥
अदेव देव है सदा अभेव भेव नाथ है ।
समस्त सिद्ध वृद्धदा सदीव सर्ब साथ है ॥ १ ॥१६१॥

न जन्त्र मैं न तन्त्र मैं न मन्त्र बसि आवई ।
पुरान औ कुरान नेत नेत कै बतावई ॥
न कर्म मैं न धर्म मैं न भर्म मैं बताइऐ ।
अगञ्ज आदि देव है कहो सु कैस पाइऐ ॥५॥१६५॥

जिमी जमान के बिखै समस्त एक जोत है ।
न घाट है न बाढ है न घाट बाढ होत है ॥
न हान है न बान है समान रूप जानिऐ ।
मकीन औ मकान अप्रमान तेज मानिऐ ॥ ६ ॥१६६॥

गजाधपी नराधपी करन्त सेव है सदा ।
सितस्सुती तपस्पती बनस्पती जपस्सदा ॥
अगस्त आदि जे बडे तपस्तपी बिसेखिऐ ।
बिअंत बिअंत बिअंत को करन्त पाठ पेखिऐ ॥१६॥१७६॥

अगाध आद देव की अनाद बात मानिऐ ।
न जात पात मन्त्र मित्र सत्र स्नेह जानिऐ ॥
सदीव सरब लोक के कृपाल खिआल मैं रहै ।
तुरन्तद्रोह देह के अनन्त भाँत सो दहै २०॥ १ ॥८०॥

त्वप्रसादि—सवैये ।

दीनन की प्रतिपाल करै नित,
संत उबार गनीमन गारै ।
पच्छ पसू नग नाग नराधिप,
सरब समै सभ को प्रतिपारै ॥
पोखत है जल मैं थल मैं,
पल मैं कल के नहीं करम बिचारै ।
दीन दयाल दयानिधि दोखन,
देखत हैं पर देत न हारै ॥१॥२४३॥
दाहत है दुख दोखन को,
दल दुज्जन के पल मैं दल डारै ।
खण्ड अखण्ड प्रचण्ड पहारन,
पूरन प्रेम की प्रीत सँभारै ॥
पार न पाइ सकै पदमापत,
बेद कतेब अभेद उचारै ।
रोज ही राज बिलोकत राजक,
रोख रूहान की रोजी न टारै॥२॥२४४॥
कीट पतंग कुरंग भुजंगम,
भूत भविख्य भवान बनाए ।
देव अदेव खपे अहमेव,
न भेव लख्यो भ्रम सिउँ भरमाए ॥
बेद पुरान कतेब कुरान,
हसेब थके कर हाथ न आए ।
पूरन प्रेम प्रभाउ बिना,
पति सिउँ किन श्री पदमापत पाए॥३॥२४५॥

आद् अनन्त अगाध अद्वैख,
सुभूत भविख्य भवान अभै है।
अन्त विहीन अनातम आप,
अदाग अदोख अछिद्र अछै है॥
लोगन के करता हरता,
जल मैं थल मैं भरता प्रभु वै है।
दीन दयाल दयाकर श्रीपत,
सुन्दर श्री पद्मापति ऐ है॥४॥२४६॥

काम न क्रोध न लोभ न मोह,
न रोग न सोग न भोग न भै है।
देह विहीन सनेह सभो तन,
नेह विरक्त अगेह अछै है॥
जान को देत अजान को देत,
जमीन को देत जमान को दै है।
काहे को डोलत है तुमरी सुध,
सुन्दर श्री पद्मापत लै है॥५ २४७॥

रोगन ते अर सोगन ते,
जल जोगन ते बहु भाँत बचावै।
सत्रु अनेक चलावत घाव,
तऊ तन एक न लागन पावै॥
राखत है अपनो कर दैकर,
पाप सँबूह न भेटन पावै।
और की बात कहा कह तो सौं,
सुपेट ही के पट बीच बचावै॥६॥२४८॥

जच्छ भुजंग सुदानव देव,
अभेव तुम्हें सबही कर ध्यावैं।
भूम अकास पताल रसातल,
जच्छ भुजंग सभै सिर न्यावैं॥
पाइ सकै नहिं पार प्रभा हूँ को,
नेत ही नेतहिं भेद बतावैं।
खोज थके सभ ही खुजीआ,
सुर हार परे हरि हाथ न आवैं॥७॥२४९॥

नारद से चतुरानन से,
रुमना रिखि से सभहूँ मिल गायो।
बेद कतेब न भेद लख्यो,
सब हार परे हरि हाथ न आयो॥
पाइ सकै नहीं पार उमापत,
सिद्ध सनाथ सनन्तन ध्यायो।
ध्यान धरो तिह को मन मैं,
जिह को अमितोज सभै जग छायो॥८॥२५०॥

बेद पुरान कतेब कुरान,
अभेद नृपान सभै पच हारे।
भेद न पाइ सकिओ अनभेद को,
खेदत है अनछेद पुकारे॥
राग न रूप न रेख न रङ्ग न,
साक न सोग न संग तिहारे।
आदि अनादि अगाध अभेख,
अद्वैख जपिओ तिनही कुल तारे॥९॥२५१

तीरथ कोट किये इस्नान,
दिये बहु दान महा बृत धारे।
देस फिरिओ करि भेस तपो,
धन केस धरे न मिले हरि प्यारे॥
आसन कोट करे अष्टांग,
धरे बहु न्यास करे मुख कारे।
दीन दयाल अकाल भजे बिन,
अन्त को अन्त के धाम सिधारे॥१०॥२५२॥

त्वप्रसादि—कवित्त ।

अत्र के चलैया छित छत्र के धरैया,
छत्र धारिन छलैया महाँ सत्रन के साल हैं।
दान के दिवैया महा मान के बढैया,
अवसान के दिवैया हैं कटैया जम जाल हैं॥
जुद्ध के जितैया औ बिरुद्ध के मिटैया,
महा बुद्ध के दिवैया महामान हूँ के मान हैं।
ज्ञान हूँ के ज्ञाता महाँ बुद्धता के दाता,
देव काल हूँ के काल महाँ काल हूँ के काल हैं॥ १ ॥२५३॥
पूरबी न पार पावैं हिंगुला हिमालै ध्यावैं,
गोर गरदेजी गुन गावै तेरे नाम हैं।
जोगी जोग साधै पउन साधना कितेक बाँधै,
आरब के आरबी अराधैं तेरे नाम हैं॥
फरा के फिरंगी मानै कंधारी कुरेसी जानैं,
पच्छम के पच्छमी पछानैं निज काम हैं।
मरहटा मघेले तेरी मन सों तपस्या करैं,
द्रदवैं तिलंगी पहचानै धर्म धाम हैं॥ २ ॥२५४॥

बंग के बंगाली फिरहंग के फिरंगावाली,
दिल्ली के दिलवाली तेरी आज्ञा मैं चलत हैं।
रोह के रुहेले माघ देस के मघेले,
बीर बंग सी बुँदेले पाप पुञ्ज को मलत हैं॥
गोखा गुन गावैं चीनम चीन के सीस न्यावैं,
तिब्बती धिआइ दोख देह को दलत हैं।
जिनैं तोहि ध्यायो तिनैं पूरन प्रताप पायो,
सरब धन धाम फल फूल सो फलत हैं॥ ३॥२५५॥

देव देवतान कौ सुरेस दान वान कौ,
महेस गंग धान कउ अभेस कहियतु हैं।
रंग मैं रंगीन राग रूप मैं प्रवीन,
और काहू पै न दीन साध अधीन कहियतु हैं॥
पाइयै न पार तेज पुञ्ज मैं अपार,
सर्ब बिद्या के उदार हैं अपार कहियतु हैं।
हाथी की पुकार पल पाछै पहुँचत ताहि,
चींटी की चिंघार पहिले ही सुनियतु है॥ ४॥२५६॥

केते इन्द्र द्वार केते ब्रह्मा मुख चार,
केते कृष्ना अवतार केते राम कहियतु हैं।
केते ससि रासी केते सूरज प्रकासी,
केते मुंडिया उदासी जोग द्वार दहियतु हैं॥
केते महाँदीन केते ब्यास से प्रवीन,
केते कुमेर कुलीन केते जच्छ कहियतु हैं।
करत बिचार पै न पूरन को पावैं पार,
ताही ते अपार निराधार लहियतु हैं॥ ५॥२५७॥

पूरन अवतार निराधार है न पारावार,
पाइयै न पार पै अपार कै बखानियै।
अद्वै अबनासी परम पूरन प्रकासी,
महारूप हूँ के रासी हैं अनासी कै कै मानियै॥
जंत्र हूँ न जात जाकी बाप हूँ न माइ ताकी,
पूरन प्रभा की सुछटा कै अनुमानियै।
तेज हूँ को तंत्र हैं कि राजसी को जंत्र हैं कि,
मोहनी को मंत्र है निजंत्र कै कै जानियै॥ ६॥२५८॥

तेज हूँ को तरु हैं कि राजसी को सरु हैं,
कि सुद्धता को घरु हैं कि सिद्धता की सार हैं।
कामना की खान हैं कि साधना की सान हैं,
बिरक्तता की बान हैं कि बुद्ध को उदार हैं॥
सुन्दर सरूप हैं कि भूपन को भूप हैं,
कि रूप हूँ को रूप हैं कुमत को प्रहार हैं।
दीनन को दाता हैं गनीमन को गारक हैं,
साधन को रच्छक हैं गुनन को पहार हैं॥ ७॥२५९॥

सिद्ध को सरूप हैं कि बुद्ध को बिभूत हैं,
कि क्रुद्ध को अभूत हैं कि अच्छै अबिनासी हैं।
काम को कुनिन्दा हैं कि खूबी को दहिन्दाँ हैं,
गनीमन गरिन्दा हैं कि तेज को प्रकासी हैं॥
काल हूँ के काल हैं कि सत्रन के साल हैं,
कि मित्रन को पोखत हैं कि बृद्धता की बासी हैं।
जोग हूँ को जंत्र हैं कि तेज हूँ को तंत्र हैं,
कि मोहनी को मंत्र हैं कि परन प्रकासी हैं॥ ८॥२६०॥

रूप को निवास हैं कि बुद्ध को प्रकास हैं,
कि सिद्धता को बास हैं कि बुद्ध हूँ को घरु हैं।
देवन को देव हैं निरंजन अभेव हैं,
अदेवन को देव हैं कि सुद्धता को सरु हैं॥
जान को बचैया हैं इमान को दिवैया,
जमजाल को कटैया हैं कि कामना को करु हैं।
तेज को प्रचण्ड हैं अखण्डण को खण्ड हैं,
महीपन को मण्ड हैं कि स्त्री हैं न नरु हैं॥ ९॥२६१॥

विस्व को भरन हैं कि अपदा को हरन हैं,
कि सुख को करन हैं कि तेज को प्रकास हैं।
पाइयै न पार पारावार हूँ को पार जाको,
कीजत बिचार सुबिचार को निवास हैं॥
हिंगला हिमालै गावैं हसब्बी हलब्बी ध्यावैं,
पूरवी न पार पावैं आसा ते अनास हैं।
देवन को देव महा देव हूँ के देव हैं,
निरंजन अभेव नाथ अद्वै अबिनासी हैं॥१०॥२६२॥

अंजन बिहीन हैं निरंजन प्रवीन हैं,
कि सेवक अधीन हैं कटैया जम जाल के।
देवन के देव महा देव हूँ के देव नाथ,
भूम के भुजैया हैं मुहीया महा बाल के॥
राजन के राजा महा साज हूँ के साजा,
महा जोग हूँ को जोग हैं धरैया द्रुम छाल के।
कामना के कर हैं कि बुद्धता को हर हैं,
कि सिद्धता के साथी हैं कि काल हैं कुचाल के॥११॥२६३॥

छीर कैसी छीरावध छाछ कैसी छत्रानेर,
छपाकर कैसी छब काल इन्द्री के कूल के।
हंसनी सी सीहा रूम हीरा सी हुसैना बाद,
गंगा कैसी धार चली सातों सिंध रूल के॥
पारा सी पलाऊ गढ़ रूपा कैसी रामपुर,
सोरा सी सुरंगाबाद नीके रही भूल के।
चम्पा सी चंदेरी कोट चाँदनी सी चाँदागढ़,
कीरति तिहारी रही मालती सी फूल के॥१२॥२६४॥

फटक सी कैलास कमाऊगढ़ काँसीपुर,
सीसा सी सुरंगाबाद नीकै सोहियतु है।
हिमा सी हिमालै हर हार सी हलब्बानेर,
हंस कैसी हाजीपुर देखे मोहियतु है॥
चंदन सी चम्पावती चन्द्रमा सी चन्द्रागिरि,
चाँदनी सी चाँदा गढ़ जोन जोहियतु है।
गंगा सम गंग धार बकान सी बिलंदाबाद,
कीरति तिहारी की उजिआरी सोहियतु है॥१३॥२६५॥

फरासी फिरंगी फरासीस के दुरंगी,
मकरान के मृदंगी तेरे गीत गाइयतु हैं।
भखरी कंधारी गोर गखरी गरदेजा चारी,
पौन के अहारी तेरो नामु ध्याइयतु हैं॥
पूरब पलाऊ काम रूप औ कमाऊ,
सर्ब ठउर मैं बिराजै जहाँ जहाँ जाइयतु हैं।
पूरन प्रतापी जंत्र मंत्र ते अतापी नाथ,
कीरति तिहारी को न पार पाइयतु हैं॥१४॥२६६॥

त्वप्रसादि—पाधड़ी छन्द ।

अद्वै अनास आसन अडोल ।
अद्वै अनन्त उपमा अतोल ॥
अच्छै सरूप अव्यक्त नाथ ।
आजान बाहु सरबा प्रमाथ ॥ १ ॥ २६७ ॥

जहँ तहँ महीप बन तन प्रफुल्ल ।
सोभा बसन्त जहँ तहँ प्रडुल्ल ॥
बन तन दुरन्त खग मृग महान ।
जहँ तहँ प्रफुल्ल सुन्दर सुजान ॥ २ ॥ २६८ ॥

फुलतं प्रफुल्ल लहि लहित मौर ।
सिर ढुरहि जान मन मथहि चौर ॥
कुदरत कमाल राजक रहीम ।
करुणानिधान कामल करीम ॥ ३ ॥ २६९ ॥

जहँ तहँ बिलोक तहँ तहँ प्रसोह ।
आजान बाहु अमितोज मोह ॥
रोसं बिरहत करुणानिधान ।
जहँ तहँ प्रफुल्ल सुन्दर सुजान ॥ ४ ॥ २७० ॥

बन तन महीप जल थल महान ।
जहँ तहँ प्रसोह करुणानिधान ॥
जगमगत तेज पूरन प्रताप ।
अम्बर जमीन जिह जपत जाप ॥ ५ ॥ २७१ ॥
सातों अकास सातों पतार ।
बिथरयो अदृष्टि जिह करम जारि ॥

———

१ ओङ्कार सतिगुरु प्रसादि ।

बिचित्र नाटक ।

त्वप्रसादि—त्रिभंगी छन्द ।

खग खण्ड बिहण्डं खल दल खण्डं अतिरण मण्डं वर बण्डं ।
भुज दण्ड अखण्डं तेज प्रचण्डं जोति अमण्डं भान प्रभं ॥
सुख सन्ताँ करणं दुर्मति दरणं किल बिख हरणं अस सरणं ।
जै जै जग कारण सृष्ट उबारण मम प्रति पारण जै तेगं ॥२॥

भुजंग प्रयात छन्द ।

सदा एक जोत्यं अजूनी सरूपं ।
महाँ देव देवं महाँ भूप भूपं ॥
निरंकार नित्यं निरूपं नृबाणं ।
क़लं कारणेयं नमो खड्ग पाणं ॥ ३ ॥

कहूँ फूल ह्वै कै भले राज फूले ।
कहूँ भवर ह्वै कै भली भाँति भूले ॥
कहूँ पवन ह्वै कै बहे बेगि ऐसे ।
कहे मो न आवै कथौं ताहि कैसे ॥ १२ ॥

रचे रैण दिवसं थपे सूर चन्द्रं ।
ठटे दईव दानो रचे बीर बिन्द्रं ॥
करी लोह कलमं लिख्यो लेख माथं ।
सबै जेर कीने बली काल हाथं ॥ २५ ॥

कई मेट डारे उसारे बनाए।
उपारे गढ़े फेरि मेटे उपाए॥
क्रिया कालजू की किनू ना पछानी।
घन्यो पै बिहै है घन्यो पै बिहानी॥ २६॥

किते कृष्न से कीट कोटै बनाए।
किते राम से मेटि डारे उपाए॥
महाँदीन केते पृथी माँझ हूए।
समै आपनी आपनी अन्त मूए॥ २७॥

जिते इन्द्र से चन्द्र से होत आए।
तितिओ काल खापा न ते काल घाए॥
जिते अउलीआ अम्बीआ गउस ह्वै हैं।
सभै काल के अन्त दाड़ा तलै हैं॥ २९॥

जिते मानधातादि राजा सुहाए।
सभै बाँधि कै काल जेलै चलाए॥
जिनै नाम ताको उचारो उबारे।
बिना साम ताकी लखे कोट मारे॥ ३०॥

नराज छन्द।

अनूप रूप राजियं। निहार काम लाजियं।
अलोक लोक सोभियं। बिलोक लोक लोभियं॥ ४५॥
चमकि चन्द्र सीसियं। रह्यो लजाइ ईसियं।
सुसोभ नाग भूखणं। अनेक दुष्ट दूखणं॥ ४६॥
कृपाण पाण धारियं। करोर पाप टारियं।
गदा गृष्ट पाणियं। कमाण बाण ताणियं॥ ४७॥

सबद संख बज्जियं। घणंकि घुंघ्र गज्जियं।
सरनि नाथ तोरियं। उबार लाज मोरियं॥ ४८॥
अनेक रूप सोहियं। बिसेख देव मोहियं।
अदेव देव देवलं। कृपा निधान केवलं॥ ४९॥
सु आदि अन्ति एकियं। धरे सरूप अनेकियं।
कृपाण पाण राजई। बिलोक पाप भाजई॥ ५०॥
अलंकृतं सु देहियं। तनो मनो कि मोहियं।
कमाण बाण धार ही। अनेक सत्रु टार ही॥ ५१॥
घमक्कि घुंघरं सुरं। नवन्न नाद नूपरं।
प्रजुआल बिज्जुलं जुलं। पवित्र परम निर्मलं॥ ५२॥

भुजंग प्रयात।

घटा सावर्ण जाण स्यामं सुहायं।
मणी नील नग्यं लखं सीस निआयं॥
महाँ सुन्दर स्यामं महाँ अभिरामं।
महाँ रूप रूपं महाँ काम कामं॥ ५९॥

फिरै चक्र चउदहूँ पुरीयं मध्याणं।
इसो कौन बीयं फिरै आइसाणं॥
कहो कुएट कौनै बिखै भाज बाचै।
सभं सीस के संग श्री काल नाचै॥ ६०॥

करे कोट कोऊ धरे कोट ओटं।
बचैगो न किउँहूँ करै काल चोटं॥
लिखं जंत्र केते पढ़ं मन्त्र कोटं।
बिना सरन ताकी नहीं और ओटं॥ ६१॥

लिखं जन्त्र थाके पढ़ं मन्त्र हारे।
करे काल ते अन्त लै कै बिचारे॥
कित्यो तन्त्र साधे जनम्मं बितायो।
भए फोकटं काज एकै न आयो॥ ६२॥

किते नास मूँदे भए ब्रह्मचारी।
किते कण्ठ कण्ठी जटा सीस धारी॥
किते चीर कानं जुगोसं कहायं।
सभे फोकटं धर्म कामं न आयं॥ ६३॥

सवैया।

काल ही पाइ भयो भगवान,
सु जागत या जग जाकी कला है।
काल ही पाइ भयो ब्रह्मा सिव,
काल ही पाइ भयो जुगीआ है॥
काल ही पाइ सुरासुर गन्धर्ब,
जच्छ भुजंग दिसा बिदिसा है।
और सकाल सभै बसि काल के,
एक ही काल अकाल सदा है॥ ८४॥

भुजंग प्रयात छंद।

नमो खड्ग खण्डं कृपाणं कटारं।
सदा एक रूपं सदा निरबिकारं॥
नमो बाण पाणं नमो दण्ड धारियं।
जिनै चौदहूँ लोक जोतं बिथारियं॥ ८७॥

नमस्कारयं मोर तीरं तुफंगं।
नमो खग्ग अदगं अभेयं अभंगं॥

गदायं गरिष्टं नमो सैह थोयं।
जिनै तुल्लियं बीर बीयो न बीयं॥ ८८॥

रसावल छन्द।

नमो चक्र पाणं। अभूतं भयाणं॥
नमो उग्र दाड़ं। महा गृष्ट गाड़ं॥ ८६॥
नमो तीर तोपं। जिनै सत्रु घोपं॥
नमो धोप पट्टं। जिनै दुष्ट दट्टं॥ ६०॥
जिते शस्त्र नामं। नमस्कार तामं॥
जिते अस्त्र भेयं। नमस्कार तेयं॥ ६१॥

सवैया।

मेर करो तृण ते मुहि जाहि,
गरीब नवाज न दूसर तो सो।
भूल छिमो हमरी प्रभु आपन,
भूलनहार कहूँ कोऊ मो सो॥
सेव करी तुमरी तिन के,
सभ ही गृह देखियत द्रब भरोसो।
या कल मैं सभ काल कृपान के,
भारी भुजान को भारी भरोसो॥ ६२॥
सुम्भ निसुम्भ से कोट निसाचर,
जाहि छिनेक बिखै हन डारे।
धूमर लोचन चण्ड अउ मुण्ड से,
माहख से पल बीच निवारे॥
चामर से रण चिच्छुर से,
रक तिच्छण से झट दै झझकारे।

ऐसो सु साहिब पाइ कहा
परवाह रही इह दास तिहारे ॥ ६३ ॥
मुण्डहु से मधु कीटभ से,
मुर से अघ से जिन कोटि दले हैं।
ओट करी कबहूँ न जिनै,
रण चोट परी पग द्वै न टले हैं॥
सिन्धु बिखै जे न बूडे निसाचर,
पावक बाण बहे न जले हैं।
ते अस तोर बिलोक अलोक,
सुलाज को छाडि कै भाजि चले हैं॥ ६४ ॥
रावण से महरावण से,
घट कानहु से पल बीच पछारे।
बारद नाद अकम्पन से,
जग जंग जुरे जिन स्यिउँ जम हारे॥
कुम्भ अकुम्भ से जीत सभै जग,
सात हूँ सिन्ध हथियार पखारे।
जे जे हुते अकटे बिकटे,
सु कटे करि काल कृपान के मारे॥ ६५ ॥

जो कहूँ काल ते भाज कै बाचियत,
तो किह कुण्ट कहो भज जईयै।
आगे हूँ काल धरे अस गाजत,
छाजत है जिह ते नसि अईयै॥
ऐसो न कै गयो कोई सुदाव रे
जाहि उपाव सों घाव बचईयै।

जाते न छूटीऐ मुढ़ कहूँ,
हँसि ताकी न किउँ सरणागति जईयै ॥६६॥

कृसन अउ बिसन जपे तुहि कोटिक,
राम रहीम भली बिधि ध्यायो।
ब्रह्म जप्यो अरु सम्भु थप्यो,
तिह ते तुहि को किनहूँ न बचायो।
कोट करी तपसा दिन कोटिक,
काहू न कौडी को काम कढायो।
काम का मंत्र कसीरे के काम न,
काल को घाउ किनहूँ न बचायो ॥ ६७ ॥

काहे को कूर करे तपसा,
इनकी कोऊ कौडी के काम न ऐ है।
तोहि बचाइ सकै कहु कैसे कै,
आपन घाव बचाइ न ऐ है॥
कोप कराल की पावक कुण्ड मैं,
आप टँग्यो तिम तोहि टँगै है।
चेत रे चेत अजो जिय मैं जड़.
काल कृपा बिनु काम न ऐ है॥ ६८ ॥

ताहि पछानत है न महापसु,
जाको प्रताप तिहूँ पुर माही।
पूजत है परमेसर कै,
जिह कै परसै परलोक पराही ॥
पाप करो परमारथ कै,
जिह पापन ते अति पाप लजाही।

पाइ परो परमेसर के जड़,
पाहन मैं परमेसर नाही ॥ ६६ ॥
मौन भजे नही मान तजे,
नही भेख सजे नही मूँड मुँडाए।
कण्ठ न कण्ठी कठोर धरे,
नही सीस जटान के जूटु सुहाए ॥
साचु कहौं सुनि लै चिति दै,
बिनु दीन दयाल की साम सिधाए।
प्रीत करे प्रभु पायत है,
कृपाल न भीजत लाँड कटाए ॥१००॥
कागद द्वीप सभै करि कै,
अरु सात समुद्रन की मसु कै हौ।
काट बनासपती सगरी,
लिखबे हूँ के लेखन काज बनै हौ ॥
सारसुती बकता करि कै,
जुगि कोटि गनेसि कै हाथ लिखै हौ।
काल कृपान बिना बिनती,
न तऊ तुमकौ प्रभु नैक रिझै हौ ॥१०१॥

सवैया।

देह शिवा बर मोहि इहै,
शुभ करमन ते कबहूँ न टरौं।
न डरौं अरि सों जब जाइ लरौं,
निश्चय कर आपनी जीत करौं ॥

अरु सिक्ख हौं आपने ही मन कौ,
इह लालच हउँ गुन तउँ उचरों।
जब आव की अउध निदान बनै,
अत ही रण मैं तब जूझ मरों ॥२३१॥
— चण्डी चरित्र।

१ ओङ्कार सतिगुरु प्रसादि।

ज्ञान प्रबोध।

त्रिभंगी छन्द—त्व प्रसादि।

अनकाद सरूपं अमित बिभूतं अचल सरूपं बिसु करणं।
जग जोति प्रकासं आदि अनासं अमित अगासं सर्ब भरणं॥
अनगंज अकालं बिसु प्रतिपालं दीन दिआलं सुभ करणं।
आनन्द सरूपं अनहदि रूपं अमित बिभूतं तव सरणं॥१।२१॥

कलस।

अमित तेज जग जोति प्रकासी।
आदि अछेद अभै अबिनासी॥
परम तत्त परमार्थ प्रकासी।
आदि सरूप अखण्ड उदासी॥ ५ ॥ २५ ॥

त्रिभंगी छन्द।

अखण्ड उदासी परम प्रकासी आदि अनासी बिस्व करं।
जगतावल करता जगत प्रहरता सभ जग भरता सिद्ध भरं॥
अच्छै अबिनासी तेज प्रकासी रूप सुरासी सरब छितं।
आनन्द सरूपी अनहद रूपी अलख बिभूती अमित गतं॥६॥२६

कलस ।

आदि अभै अनगाधि सरूपं ।
राग रंग जिह रेख न रूपं ॥
रंक भयो रावत कहूँ भूपं ।
कहूँ समुद्र सरता कहूँ कूपं ॥ ७ ॥ २७ ॥

त्रिभंगी छन्द ।

सरता कहूँ कूपं समुद्र सरूपं अलख बिभूतं अमित गतं ।
अद्वै अबिनासी परम प्रकासी तेज सुरासी अकृत कृतं ॥
जिह रूप न रेखं अलख अभेखं अमित अद्वैखं सरबमई ।
सभ किल बिख हरणं पतित उधरणं असरणि सरणं एकदई ॥
॥८॥२८॥

कलस ।

आजानु बाहु सारंग कर धरणं ।
अमित जोति जग जोति प्रकरणं ॥
महा बाहु बिस्वम्भर भरणं ।
खड्ग पाण खल दल बल हरणं ॥ ६ ॥ २६ ॥

त्रिभंगी छन्द ।

खल दल बल हरणं दुष्ट बिडरणं असरण सरणं अमित गतं ।
चञ्चल चख चारण मच्छ बिडारण पाप प्रहारण अमित मतं ॥
आजान सुबाहं साहन साहं महिमा माहं सरब मई ।
जल थल बन रहिता बन त्रिनि कहिता खल दलि दहिता सुनरि सही ॥ १० ॥ ३० ॥

छप्पै छन्द।

बेद भेद नहीं लखै ब्रह्म ब्रह्मा नहीं बुज्झै।
बिआस परासुर सुक सनादि सिव अन्त न सुज्झै॥
सनति कुआर सनकादि सरब जउ समा न पावहि।
लख लखमी लख बिसन किसन कई नेत बतावहि॥
असम्भ रूप अनभै प्रभा अति बलिस्ट जलि थलि करण।
अच्युत अनन्त अद्वै अमित नाथ निरंजन तव सरण॥१॥३२॥
अच्युत अभै आभेद अमित आखण्ड अतुल बल।
अटल अनन्त अनादि अखै आखंड प्रबल दल॥
अमित अमित अनतोल अभू अनभेद अभञ्जन।
अनबिकार आतम सरूप सुर नर मुन रञ्जन॥
अबिकार रूप अनभै सदा मुन जन गन बन्दत चरन।
भव भरन करन दुख दोख हरन अतिप्रताप भ्रम भै हरन॥२॥३३
नमो नाथ निरदाइक नमो निमरूप निरञ्जन।
अगञ्जाण अगञ्जण अभञ्ज अनभेद अभञ्जन॥
अच्छै अखै अबिकार अभै अनभिज्ज अभेदन।
अखेदान खेदन अखिज्ज अनछिद्र अछेदन॥
आजानबाहु सारंगधर खड़गपाण दुरजन दलण।
नर वर नरेस नाइक नृपणि नमो नवल जल थल रवणि।४।३५
दीन दयाल दुखहरण दुर्मतहन्ता दुख खण्डन।
महाँ मोन मनहरन मदन मूरत मह मण्डन॥
अमित तेज अबिकार अखै आभञ्ज अमित बल।
निरभञ्ज निरभउ निर वैर निर जुर नृप जल थल॥
अच्छै सरूप अच्छू अछित अच्छै अछान अच्छर।
अद्वै सरूप अद्विय अमर अभिबन्दत सुरनर असर॥५॥३६॥

चक्रत च्चार चक्कवै चक्रत चउकुएठ चवग्गन ।
कोट सूर सम तेज तेज नहीं दून चवग्गन ॥
कोट चन्द चक्र परै तुल्य नहीं तेज बिचारत ।
बिआस परासर ब्रह्म भेद नहि भेद उचारत ॥
साहान साह साहिब सुघरि अति प्रताप सुंदर सबल ।
राजान राज साहिब सबल अमित तेज अच्छै अछल ॥८॥३६॥

कवित्त—त्वप्रसादि ।

गह्यो जो न जाइ सो अगाह कै कै गाहियतु,
छेद्यो जो न जाइ सो अछेद कै पछानियै ।
गंज्यो जो न जाइ सो अगञ्ज कै कै जानियतु,
भंज्यो जो न जाइ सो अभञ्ज कै कै मानियै ॥
साध्यो जो न जाइ सो असाधि कै कै साध कर,
छल्यो जो न जाइ सो अछल कै प्रमानियै ।
मंत्र मैं न आवै सो अमंत्र कै कै मानु मन,
जंत्र मैं न आवै सो अजंत्र कै कै जानियै ॥१॥४०॥

जात मैं न आवै सो अजात कै कै जानु जिय,
पात मैं न आवै सो अपात कै बुलाइयै ।
भेद मैं न आवै सो अभेद कै कै भाखियतु,
छेद्यो जो न जाइ सो अछेद कै सुनाइयै ॥
खंड्यो जो न जाइ सो अखंड जू को ख्यालु कीजै,
ख्याल मैं न आवै गमु ताको सदा खाइयै ।
जंत्र मैं न आवै सो अजंत्र कै कै जापियतु,
ध्यान मैं न आवै ताको ध्यानु कीजै ध्याइयै ॥२॥४१॥

छत्रधारी छत्रीपति छैलरूप छितनाथ,
छौणीकर छायावर छत्रीपत गाइयै।
बिस्वनाथ बिस्वम्भर बेदनाथ बालाकर,
बाजीगरि बानधारी बन्धन बताइयै॥
निउली कर्म दूधाधारी बिद्याधर ब्रह्मचारी,
ध्यान को लगावै नैक ध्यान हूँ न पाइयै।
राजन के राजा महाराजन के महाराजा,
ऐसो राज छोडि अउर दूजा कउन ध्याइयै॥३॥४२॥

जुद्ध के जितैया रंग भूमि के भवैया,
भार भूम के मिटैया नाथ तीनो लोक गाइयै।
काहू के तनैया है न मैया जाके भैया कोऊ
छउनी हूँ के छैया छोड कासिउँ प्रीत लाइयै॥
साधना सधैया धूल धानी के धुजैया,
धोम धार के धरैया ध्यान ताको सदा लाइयै।
आउ के बढैया एक नाम के जपैया
अउर काम के करैया छोड अउर कउन ध्याइयै॥४॥४३॥

काम को कुनिन्दा खैर खूबी को दिहिन्दा,
गज गाजी को गजिन्दा सो कुनिन्दा कै बताइयै।
चाम के चलिन्दा घाउ घाम ते बचिन्दा,
छत्र छौनी के छलिन्दा सो दिहिन्दा कै मनाइये॥
जर को दिहन्दा जान मान को जनिन्दा,
जोत जेब को गजिन्दा जान मान जान गाइयै।
दोख के दलिन्दा दीन दानस दहिन्दा,
दोख दुर्जन दलिन्दा ध्याइ दूजो कउन ध्याइयै॥५॥४४॥

सालिस सिहिन्दा सिद्धताई को सधिन्दा,
अङ्ग अङ्ग मैं अविन्दा एकु एको नाथ जानियै ।
कालख कटिन्दा खुरासान को खुनिन्दा,
गर्ब गाफल गलिन्दा गोल गञ्जख बखानियै ॥
गालब गिरन्दा जीत तेज के दिहन्दा,
चित्र चाप के चलिन्दा छोड अउर कउन आनियै ।
सत्वता दिहिन्दा सत्वताई को सुखिन्दा,
कर्म काम को कुनिन्दा छोड दूजा कउन मानियै ॥६॥४५॥

जोति को जगिन्दा जंग जाफरी दहिन्दा,
मित्र मारी के मलिन्दा पै कुनिन्दा कै बखानियै ।
पालक पुनिन्दा परम पारसी प्रगिन्दा,
रंग राग के सुनिन्दा पै अनन्दा तेज मानियै ॥
जाप के जपिन्दा खैर खूबी के दिहिन्दा,
खूम माफ के कुनिन्दा है अभिज्ज रूप ठानियै ।
आरजा दहिन्दा रंग राग के बढिन्दा
दुष्ट द्रोह के दलिन्दा छोड दूजो कौन मानियै ॥७॥४६॥

आतमा प्रधान जाहि सिद्धता सरूप ताहि,
बुद्धता बिभूत जाहि सिद्धता सुभाउ है ।
राग भी न रंग ताहि रूप भी न रेख जाहि,
अंग भी सुरंग ताहि रंग के सुभाउ है ॥
चित्र सो बिचित्र है परमता पवित्र हैसु,
मित्र हूँ के मित्र है बिभूत को उपाउ है ।
देवन को देव है कि साहन को साह है,
कि राजन को राजु है कि रावन को राउ है ॥८॥४७॥

अर्धनराज छन्द—त्वप्रसादि।

सजस्तुयं। धजस्तुयं॥ अलस्तुयं। इकस्तुयं ॥ १ ॥ ६७ ॥
जलस्तुयं। थलस्तुयं॥ पुरस्तुयं । बनस्तुयं ॥ २ ॥ ६८ ॥
गुरस्तुयं । गुफस्तुयं॥ निरस्तुयं। निदस्तुयं ॥ ३ ॥ ६९ ॥
रवस्तुयं । ससस्तुयं॥ रजस्तुयं । तमस्तुयं ॥ ४ ॥ ७० ॥
धनस्तुयं। मनस्तुयं ॥ बृछस्तुयं । बनस्तुयं ॥ ५ ॥ ७१ ॥
मतस्तुयं। गतस्तुयं ॥ व्रतस्तुयं । चितस्तुयं ॥ ६ ॥ ७२ ॥
पितस्तुयं। सुतस्तुयं॥ मतस्तुयं । गतस्तुयं ॥ ७ ॥ ७३ ॥
नरस्तुयं । त्रियस्तुयं॥ पितस्तुय। बृदस्तुयं ॥ ८ ॥ ७४ ॥
हरिस्तुयं। करस्तुयं ॥ छलस्तुयं। बलस्तुयं ॥ ९ ॥ ७५ ॥
उडस्तुयं। पुडस्तुयं ॥ गडस्तुयं। दधस्तुय ॥ १०॥ ७६ ॥
रवस्तुयं । छपस्तुयं ॥ गर्बस्तुय । द्रिबस्तुयं ॥११॥ ७७ ॥
जैअस्तुयं। खैअस्तुयं ॥ पैअस्तुयं। त्रैअस्तुयं ॥१२॥ ७८ ॥

रसावल छन्द—त्वप्रसादि।

दयादि आदि धरमं। सन्यास आदि करमं।
गजादि आदि दानं। हयादि आदि थानं॥ १ ॥१०९॥
सुवर्न आदि दानं। समुद्र आदि स्नानं।
बिस्वादि आदि भरमं। बिरक्तादि आदि करमं ॥२॥११०॥
निवल आदि करणं। सुनील आदि बरणं।
अनील आदि ध्यानं। जपत तत्त प्रधानं॥ ३ ॥१११॥
अमितकादि भगतं। अविक्तादि व्रकतं।
प्रछस्तुवा प्रजापं। प्रभगतुवा अथापं॥ ४ ॥११२॥
सुभक्तादि करणं। अजग्तुआ प्रहरणं।
बिरक्तुआ प्रकासं। अविग्तुआ प्रणासं॥५॥११३॥

समस्तुआ प्रधानं । धुजस्तुआ धरानं ।
अविक्तुआ अभंगं । इकस्तुआ अनंगं ॥ ६ ॥ ११४ ॥
उअस्तुआ अकारं । कूपस्तुआ कूपारं ।
खितस्तुआ अखंडं । गतस्तुआ अगण्डं ॥ ७ ॥ ११५ ॥
घरस्तुआ घरानं । ङ्अिस्तुआ ङ्ि हालं ।
चितस्तुआ अतापं । छितस्तुआ अछापं ॥ ८ ॥११६॥
जितस्तुआ अजापं । झिकस्तुआ अझापं ।
ञिकस्तुआ अनेकं । टुटस्तुआ अटेटं ॥ ९ ॥ ११७॥
ठटस्तुआ अठाटं । डटस्तुआ अडाटं ।
ढटस्तुआ अढापं । णकस्तुआ अणापं ॥ १० ॥११८॥
तपस्तुआ अतापं । थपस्तुआ अथापं ।
दळस्तुआदि दोखं । नहिस्तुआ अनोखं ॥ ११ ॥११९॥
पअक्तुआ अपामं । फलक्तुआ फलानं ।
बदक्तुआ बिसेखं । भजस्तुआ अभेखं ॥ १२ ॥१२०॥
मतस्तुआ फलानं । हरिक्तुआ ह्रदानं ।
ड़अक्तुआ अड़ंगं । त्रिकस्तुआ त्रिभंगं ॥ १३ ॥१२१॥
रंगस्तुआ अरंगं । लत्रस्तुआ अलंगं ।
यकस्तुआ यकापं । इकस्तुआ इकापं ॥ १४ ॥१२२॥
वदिस्तुआ वरदानं । यकस्तुआ इकानं ।
लवस्तुआ अलेखं । ररिस्तुआ अरेखं ॥ १५ ॥१२३॥
त्रिअस्तुआ त्रिभंगे । हरिस्तुआ हरंगे ।
महिस्तुआ महेसं । भजस्तुआ अभेसं ॥ १६ ॥१२४॥
बरस्तुआ बरानं । पलस्तुआ फलानं ।
नरस्तुआ नरेसं । दलस्तुआ दलेसं ॥ १७ ॥१२५॥

१ ओंकार सतिगुर प्रसादि

चौबीस अउतार।

चौपई।

जब जब होत अरिष्टि अपारा।
तब तब देह धरत अवतारा॥
काल सबन को पेख तमासा।
अन्तह काल करत है नासा॥ २॥
काल सभन का करत पसारा।
अन्त काल सोई खापन हारा॥
आपन रूप अनन्तन धरही।
आपहिं मध्य लीन पुन करही॥ ३॥
काल आपनो नाम छपाई।
अवरन के सिरि दै बुरिआई॥
आपन रहत निरालम जग ते।
जान लए जाना मैं तब ते॥ ५॥
आप रचे आपे कल घाए।
अवरन कै दै मूँड हताए॥
आप निरालमु रहा न पाया।
ताँते नामु बिअन्त कहाया॥ ६॥
जो चउबीस अवतार कहाए।
तिन भी तुम प्रभु तनक न पाए॥
सभ ही जग भरमे भवरायं।
ताते नामु बिअन्त कहायं॥ ७॥

सभ ही छलत न आप छलाया।
ताते छलिया आप कहाया॥
सन्तन दुखी निरख अकुलावै।
दीन बन्धु ताते कहलावै॥ ८॥

अन्त करत सभ जग को काला।
नामु काल ताते जग डाला॥
समै सन्त पर होत सहाई।
ताते संख्यासन्त सुनाई॥ ६॥
निरख दीन पर होत दिआरा।
दीन बन्धु हम तवै बिचारा॥
संतन पर करुणा रस ढरई।
करुणा निधि जग तवै उचरई॥ १०॥

संकट हरत साधुत्रन सदा।
संकट हरण नामु भयो तदा॥
दुख दाहत सन्तन के आयो।
दुख दाहन प्रभु तदिन कहायो॥ ११॥
रहा अनन्त अन्त नहिं पायो।
याते नामु बिअन्त कहायो॥
जग मों रूप सभन के धरता।
याते नामु बखानैं करता॥ १२॥

किनहूँ कहूँ न ताहि लखायो।
इह कर नामु अलक्ख कहायो॥
जोन जगत मैं कबहुँ न आया।
याते सभों अजोन बताया॥ १३॥

ब्रह्मादिक सब ही पच हारे।
बिसन महेस्वर कउन बिचारे॥
चन्द सूर्य जिन करे बिचारा।
ताते जनियत है करतारा॥ १४॥

सदा अभेख अभेखी रहई।
ताते जगत अभेखी कहई॥
अलख रूप किनहूँ नहिं जाना।
तिह कर जात अलेख बखाना॥ १५॥

रूप अनूप सरूप अपारा।
भेख अभेख सभन ते न्यारा॥
दाइक सभो अजाची सभ ते।
जान लयो करता हम तब ते॥ १६॥

लगन सगन ते रहत निरालम।
है यह कथा जगत मैं मालम॥
जन्त्र मन्त्र तन्त्र न रिझाया।
भेख करत किनहूँ नहिं पाया॥ १७॥

जग आपन आपन उरझाना।
पारब्रह्म काहू न पछाना॥
इक मड़ीअन कबरन वे जाँहीं।
दुहुँअन मैं परमेस्वर नाँहीं॥ १८॥

ए दोउ मोह बाद मों पचे।
इन ते नाथ निराले बचे॥
जाते छूटि गयो भ्रम उर का।
तिह आगै हिन्दू क्या तुरका॥ १९॥

इक तसबी इक माला धरही।
एक कुरान पुरान उचरही॥
करत बिरुद्ध गए मर मूढ़ा।
प्रभु को रंगु न लागा गूढ़ा॥ २०॥
जो जो रंग एक के राचे।
ते ते लोक लाज तजि नाचे॥
आदि पुरख जिन एकु पछाना।
दुतीआ भाव न मन महि आना॥ २१॥
जे जे भाव दुतीआ महि राचे।
ते ते मीत मिलन ते बाचे॥
एक पुरख जिन नैक पछाना।
तिनही परम तत्त कहँ जाना॥ २२॥
जोगी सन्यासी हैं जेते।
मुँडीआ मुसलमान गन केते॥
भेख धरे लूटत संसारा।
छपत साध जिह नामु अधारा॥ २३॥
जिन प्रभु एक वहै ठहरायो।
तिन कर डिम्भ न किसू दिखायो॥
सीस दीयो उन सिर्र न दीना।
रञ्च समान देहि करि चीना॥ २६॥
कान छेद जोगी कहवायो।
अति प्रपञ्च कर बनहि सिधायो॥
एक नामु को तत्व न लयो।
बन को भयो न गृह को भयो॥ २७॥

— आदि मङ्गल।

सवैया ।

पाइ गहे जब ते तुमरे,
तब ते कोउ आँख तरे नहीं आन्यो ।
राम रहीम पुरान कुरान,
अनेक कहैं मत एक न मान्यो ॥
सिमृति शास्त्र बेद सबै,
बहु भेद कहैं हम एक न जान्यो ।
श्री असपान कृपा तुमरी कर,
मैं न कह्यो सब तोहि बखान्यो ॥ ८६३ ॥

दोहरा ।

सगल दुआर कउ छाडि कै, गह्यो तुहारो दुआर ।
बाँहि गहे की लाज अस, गोबिन्द दास तुहार ॥ ८६४ ॥

—रामाबतार ।

सवैया ।

छत्री को पूत हौं बामन को नहिं,
कै तपु आवत है जु करों ।
अरु अउर जञ्जार जितो गृह को
तुहि त्याग कहा चित तामैं धरों ॥
अब रीझ कै देहु वहै हम कउ,
जोउ हउँ बिनती कर जोर करों ।
जब आउ की अउध निदान बनै,
अति ही रन मैं तब जूझ मरों ॥२४८९॥

धन्य जीयो तिह को जग मैं,
मुख ते हरि चित्त मैं जुद्ध बिचारै।
देह अनित्त न नित्त रहै,
जसु नाव चढ़ै भवसागर तारै॥
धीरज धाम बनाइ इहै तन,
बुद्धि सु दीपक जिउँ उजियारै।
ज्ञानहि की बढनी मनहु हाथ लै,
कातरता कुत वार बुहारै॥ २४६२॥

—कृष्णावतार।

तोमर छन्द।

जो जाप है कलि नाम। तिस पूरन हुइ है काम॥
तिस दूख भूख न प्यास। जित्त हर्ख कहूँ न उदास॥ ३॥
बिन एक दूसर नाहि। सभ रंग रूपन माहि॥
जिह जापिआ तिह जाप। तिनके सहाई आप॥ ४॥
जे जीव जन्त अनेक। तिन मो रहे रम एक॥
बिन एक दूसर नाहिं। जग जान लै जीअ माहिं॥ ७॥
भव गढ़न भञ्जन हार। है एक ही करतार॥
बिन एक अउर न कोइ। सब रूप रंगी सोइ॥ ८॥
कई सुक्र ब्रसपत देख। कई दत्त गोरख भेख॥
कई राम कृष्न रसूल। बिनु नाम को न कबूल॥ १२॥
बिनु एक आसौ नाम। नहीं और कौनै काम॥
जे मान हैं गुरुदेव। ते जान हैं अनभेव॥ १३॥

—ब्रह्मा अवतार।

सवैया ।

देस बिदेस नरेसन जीत,
अनेस बडे अवनेस संहारे ।
आठोई सिद्ध सबै नव निद्धि,
समृद्धन सरब भरे गृह सारे ॥
चन्द्रमुखी बनिता बहुतै घार,
माल भरे नहीं जात सँभारे ।
नाम बिहीन अधीन भए जम,
अन्ति कौ नागे ही पाइ सिधारे ॥४६१॥

रावन के महिरावन के,
मनु के नल के चलते न चली गउँ ।
भोज दिलीपत कौरवि कै,
नहीं साथ दयो रघुनाथ बली कउँ ॥
संगि चली अब लौं नहीं काहुँ के,
साच कहौं अघ अउघ दली सउँ ।
चेत रे चेत अचेत महाँ पसु,
काहूँ के संगि चली न हली हउँ ॥४६२॥

काहे कउ बस्त्र धरो भगवे मुनि,
ते सब पावक बीच जलैगी ।
क्यों इम रीति चलावत हो,
दिन द्वैक चलै सबदा न चलैगी ॥
काल कराल की रीत महाँ,
इह काहू जुगेस छली न छलैगी ।
सुन्दरि देहि तुमारी महा मुनि,
अन्ति मसान ह्वै धूर रलैगी ॥४६४॥

काहे कौ पौन भछो सुनि हो मुनि,
पउन भछे कछु हाथ न ऐ है।
काहे को बस्त्र करो भगवा,
इन बातन सो भगवान न पै है॥
बेद पुरान प्रमान कै देखहु,
ते सब ही बस काल सबै है।
जार अनङ्गन नङ्ग कहावत,
सीस के संगि जटाउ न जै है॥४६५॥

कञ्चन कूट गिर्‌यो कहु काहे न,
सातओ सागर क्यों न सुकानो।
पस्चम भान उद्दयो कहु काहे न,
गंग बही उलटी अनमानो॥
अन्ति बसन्त तप्यो रवि काहे न,
चन्द समान दिनीस प्रमानो।
क्यों डम डोल डुबी न धरा मुनि,
राजनि पातनि त्यों जग जानो॥४६६॥

अत्र परासर नारद सारद,
ब्यास ते आदि जिते मुनि भाए।
गालव आदि अनन्त मुनीस्वर,
ब्रह्म हूँ ते नहीं जात गनाए॥
अगस्त पुलस्त बसिस्ट ते आदि,
न जान परे किह देस सिधाए।
मन्त्र चलाइ बनाइ महा मति,
फेरि मिले पर फेर न आए॥४६७॥

—दत्तात्रे अवतार।

१ ओंकार सतिगुरु प्रसादि ।

हज़ारे के शब्द ।

रामकली ।

रे मन ऐसो करि सन्यासा ।
बन से सदन सभै करि समझहु मनही माँहि उदासा ॥१॥ रहाउ ॥
जत की जटा जोग को मंजनु नेम के नखन बढाओ ।
ज्ञान गुरू आतम उपदेसहु नाम बिभूत लगाओ ॥ १ ॥
अलप अहार सुलप सी निन्द्रा दया छिमा तन प्रीति ।
सील सन्तोख सदा निरबाहिबो ह्वैबो त्रिगुण अतीति ॥ २ ॥
काम क्रोध हंकार लोभ हठ मोह न मन सो ल्यावै ।
तब ही आतम तत्व को दरसे परम पुरख कह पावै ॥ ३ ॥ १॥

रामकली ।

रे मन इह बिधि जोगु कमाओ ।
सिंङी साच अकपट कण्ठला ध्यान बिभूति चढ़ाओ ॥१॥ रहाउ॥
ताती गहु आतम बसिकर की भिच्छा नाम अधारं ।
बाजे परम तार ततु हरि को उपजै राग रसारं ॥ १ ॥
उघटै तान तरंग रंगि अति ज्ञान गीत बन्धानं ।
चकि चकि रहे देव दानव मुनि छकि छकि ब्योम बिवानं ॥२॥
आतम उपदेस भेसु सञ्जम को जाप सु अजपा जापे ।
सदा रहै कञ्चन सी काया काल न कबहूँ ब्यापे ॥ ३ ॥२ ॥

रामकली ।

प्रानी परम पुरख पग लागो ।
सोवत कहा मोह निन्द्रा मैं कबहूँ सुचित ह्वै जागो ॥१॥ रहाउ ॥

औरन कहा उपदेसत है पसु तोहि प्रबोध न लागो ।
सिञ्चत कहा परे बिखियन कह कबहुँ बिखै रस त्यागो ॥१॥रहाउ॥
केवल करम भरम से चीनहु धरम करम अनुरागो ।
संग्रह करो सदा सिमरन को परम पाप तजि भागो ॥ २ ॥
जाते दूख पाप नहिं भेटै काल जाल ते तागो ।
जो सुख चाहो सदा सभन कौ तौ हरि के रस पागो ॥ ३ ॥ ३ ॥

रागु सोरठि ।

प्रभु जू तोकह लाज हमारी ।
नील कण्ठ नर हरि नाराइण नील बसन बनवारी ॥ १ ॥ रहाउ ॥
परम पुरख परमेस्वर स्वामी पावन पउन अहारी ।
माधव महा जोति मध मरदन मान मुकन्द मुरारी ॥ १ ॥
निर्बिकार निरजुर निन्द्रा बिन निर्बिख नरक निवारी ।
कृपासिन्धु काल त्रै दरसी कुकृत प्रनासन कारी ॥ २ ॥
धनुर पान धृत मान धराधर अनिबिकार असिधारी ।
हौं मति मन्द चरन सरनागति कर गहि लेहु उबारी ॥ ३ ॥१॥४

रागु कल्याण ।

बिनु करतार न किरतम मानो ।
आदि अजोन अजै अबिनासी तिह परमेसर जानो ॥१॥ राहउ ॥
कहा भयो जो आनि जगत मैं दसक असुर हरि घाए ।
अधिक प्रपञ्च दिखाइ सभन कहि आपहि ब्रह्म कहाए ॥ १ ॥
भञ्जन गढ़न समरथ सदा प्रभु सो किम जाति गिनायो ।
ताते सरब काल के असि को घाइ बचाइ न आयो ॥ २ ॥
कैसे तोहि तारि है सुनि जड़ आप डुब्यो भवसागर ।
छुटि हो काल फास ते तबही गहो सरनि जगतागर ॥३॥१॥५॥

ख्याल।

मित्र प्यारे नूँ हाल मुरीदाँ दा कहणा।
तुधु बिनु रोगु रजाइयाँ दा ओढण नाग निवासाँ दे रहणा।
सूल सुराही खञ्जरु पियाला बिंगु कसाइयाँ दा सहणा॥
यारड़े दा सानू सथरु चंगा भट्ठ खेड़याँ दा रहणा॥१॥१॥६॥

तिलंग काफ़ी।

केवल काल ई करतार।
आदि अन्त अनन्ति मूरति गढ़न भञ्जन हार॥१॥ रहाउ॥
निन्द उस्तत जउन के सम सत्रु मित्र न कोइ।
कउन बाट परी तिसै पथ सारथी रथ होइ॥ १॥
तात मात न जात जाकर पुत्र पौत्र मुकन्द।
कउन काज कहाहिगे ते आनि देवकि नन्द॥ २॥
देव दैत दिसा विसा जिह कीन सरब पसार।
कउन उपमा तउन को मुख लेत नामु मुरार॥ ३॥१॥७॥

राग बिलावल।

सो किम मानस रूप कहाए।
सिद्ध समाध साध कर हारे क्यों हूँ न देखन पाए॥१॥ रहाउ
नारद ब्यास परासर ध्रूअ से ध्यावत ध्यान लगाए।
बेद पुरान हार हठ छाड्यो तदपि ध्यान न आए॥ १॥
दानव देव पिसाच प्रेत ते नेतह नेत कहाए।
सूछम ते सूछम कर चीने बृद्धन बृद्ध बताए॥ २॥
भूमि अकास पताल सभै सजि एक अनेक सदाए।
सो नर काल फास ते बाचे जो हरि सरण सिधाए॥ ३॥१॥८॥

राग देवगन्धारी ।

इक बिन दूसर सो न चिनार ।
भञ्जन गढ़न समर्थ सदा प्रभु जानत है करतार ॥१॥ रहाउ ॥
कहा भयो जो अति हित चित कर बहु बिधि सिला पुजाई ।
प्रान थक्यो पाहिन कहि परसत कछु कर सिद्ध न आई ॥ १ ॥
अच्छत धूप दीप अरपत है पाहन कछू न खै है ।
तामैं कहाँ सिद्ध है रे जड़ तोहि कछू बर दै है ॥ २ ॥
जौ जिय होत तौ देत कछू तुहि मन बच कर्म बिचार ।
केवल एक सरण स्वामी बिन यौं नहि कतहि उद्धार ॥३॥१॥६॥

राग देवगन्धारी ।

बिन हरि नाम न बाचन पै है ।
चौदह लोक जाहि बस कीने तातें कहाँ पलै है ॥ १ ॥ रहाउ ॥
राम रहीम उबार न सक हैं जाकर नाम रटै है ।
ब्रह्मा बिसन रुद्र सूरज ससि ते बसि काल सबै है ॥ १ ॥
बेद पुरान कुरान सबै मत जाकहि नेत कहै है ।
इन्द्र फनिन्द्र मुनिन्द्र कलप बहु ध्यावत ध्यान न ऐ है ॥ २ ॥
जाकर रूप रंग नहिं जनियत सो किम स्याम कहै है ।
छुटहो काल जाल ते तबही ताहि चरन लपटै है ॥ ३ ॥
॥ २ ॥ १० ॥ ३४ ॥

१ ओंकार सतिगुरु प्रसादि ।

३३ सवैये ।

जागति ज्योति जपै निस बासुर,
एक बिना मन नैक न आनै ।
पूरन प्रेम प्रतीत सजै व्रत,
गोर मड़ी मट भूल न मानै ॥
तीरथ दान दया तप सञ्जम,
एक बिना नहिं एक पछानै ।
पूरन ज्योति जगै घट मैं तब,
ख़ालस ताहिं निख़ालस जानै ॥ १ ॥

सत्ति सदैव सरूप सतव्रत,
आदि अनादि अगाध अजै है ।
दान दया दम सञ्जम नेम,
जतव्रत सील सुवृत अबै है ॥
आदि अनील अनादि अनाहद,
आपि अद्वैख अभेख अभै है ।
रूपि अरूप अरेख जरारद्न,
दीन दयाल कृपाल भए है ॥ २ ॥

आदि अद्वैख अभेख महा प्रभु,
सत्ति सरूप सु जोत प्रकासी ।
पूर रह्यो सभ ही घट कै पट,
तत्त समाधि सुभाव प्रणासी ॥

आदि जुगादि जगादि तुही प्रभु,
फैल रह्यो सभ अन्तरि बासी।
दीन दयाल कृपाल कृपा कर,
आदि अजोन अजै अबिनासी ॥ ३ ॥

आदि अभेख अछेद सदा प्रभु,
बेद कतेबनि भेदु न पायो।
दीन दयाल कृपाल कृपानिधि,
सत्ति सदैव सबै घट छायो॥
सेस सुरेस गणेस महेसुर,
गाहि फिरैं श्रुति थाह न आयो।
रे मन मूढ़ि अगूढ़ इसो प्रभु,
तैं किहि काजि कहो बिसरायो॥ ४ ॥

अच्युत आदि अनील अनाहद,
सत्त सरूप सदैव बखाने।
आदि अजोनि अजाइ जरा बिनु,
परम पुनीत परम्मपर माने॥
सिद्ध स्वयम्भू प्रसिद्ध सबै जग,
एक ही ठौर अनेक बखाने।
रे मन रङ्क कलङ्क बिना हरि,
तैं किहि कारण ते न पछाने॥ ५ ॥

अच्छर आदि अनील अनाहद,
सत्त सदैव तुही करतारा।
जीव जिते जल मैं थल मैं,
सब कै सद पेट को पोखन हारा॥

बेद पुरान कुरान दुहूँ मिल,
भाँति अनेक बिचार बिचारा।
और जहान निदान कछू नहिं,
ए सुबहान तुही सरदारा ॥ ६ ॥

आदि अगाधि अछेद अभेद,
अलेख अजेय अनाहद जाना।
भूत भविख्य भवान तुही,
सब हूँ सब ठौरन मो मनु माना ॥
देव अदेव महीधर नारद,
सारद सत्ति सदैव पछाना।
दीन दयाल कृपानिधि को कछु,
भेद पुरान कुरान न जाना ॥ ७ ॥

सत्ति सदैव सरूप सतब्रत,
बेद कतेब तुही उपजायो।
देव अदेवन देव महीधर,
भूत भवान वही ठहरायो ॥
आदि जुगादि अनील अनाहद,
लोक अलोक बिलोकन पायो।
रे मन मूढ़ अगूढ़ इसो प्रभु,
तोहि कहो किहि आन सुनायो ॥ ८ ॥

देव अदेव महीधर नागन,
सिद्ध प्रसिद्ध बडो तपु कीनो।
बेद पुरान कुरान सबै गुन,
गाइ थके पै तो जाइ न चीनो ॥

भूम अकास पतार दिसा,
बिदिसा जिहि सो सबके चित चीनो।
पूर रही महि मो महिमा,
मन मैं तिहि आन मुझै कहि दीनो ॥ ६ ॥

बेद कतेब न भेद लह्यो,
तिहि सिद्ध समाधि सबै करि हारे।
सिम्मृति शास्त्र बेद सबै,
बहु भाँति पुरान बिचार बिचारे ॥
आदि अनादि अगाधि कथा,
ध्रूअ से प्रहलाद अजामल तारे।
नामु उचार तरी गनिका,
सोई नामु अधार बिचार हमारे ॥ १० ॥

आदि अनादि अगाधि सदा प्रभु,
सिद्ध स्वरूप सबो पहिचान्यो।
गन्धर्ब जच्छ महीधर नागन,
भूम अकास चहूँ चक जान्यो ॥
लोक अलोक दिसा बिदिसा अरु,
देव अदेव दुहूँ प्रभु मान्यो।
चित्त अज्ञान सुजान सुयम्भव,
कौन की कानि निदान भुलान्यौ ॥ ११ ॥

काहू लै ठोक बधे उर ठाकुर,
काहू महेस कौ एस बखान्यो।
काहू कह्यो हरि मन्दिर मैं,
हरि काहू मसीत कै बीच प्रमान्यो ॥

काहू ने राम कह्यो कृष्ना,
काहु काहू मनै अवतारन मान्यो।
फोकट धर्म बिसार सबै,
करतार ही कउ करता जिय जान्यो ॥ १२ ॥

जौ कहौ राम अजोनि अजै अति,
काहे को कौसल कुक्ष जयो जू।
काल हूँ कान्ह कहैं जिहि कौ,
किहि कारण काल ते दीन भयो जू ॥
सन्त सरूप बिवैर कहाइ,
सु क्यों पथ को रथ हाँक धयो जू।
ताही को मान प्रभू करिकै,
जिह को कोऊ भेदु न ले न लयो जू ॥१३॥

क्यों कहु कृष्न कृपानिधि है,
किहि काज ते बद्धक बाणु लगायो।
अउर कुलीन उधारत जो,
किह ते अपनो कुल नासु करायो ॥
आदि अजोनि कहाइ कहो किम,
देवकि के जठरन्तर आयो।
तात न मात कहै जिह को,
तिह क्यों बसुदेवहि बापु कहायो ॥ १४ ॥

काहे कौ एस महेसहिं भाखत,
काहि दिजेस को एस बखान्यो।
है न रघ्वेस जद्वेस रमापति,
तै जिन कौ बिस्वनाथ पछान्यो ॥

एक कौ छाडि अनेक भजै,
सुक देव परासर ब्यास झुठान्यो।
फोकट धर्म सजे सब ही,
हम एक ही कौ बिधनेक प्रमान्यो ॥ १५ ॥

कोऊ दिजेस कौ मानत है अरु,
कोऊ महेस कौ एस बतै है।
कोऊ कहै बिसनो बिसनाइक,
जाहि भजे अघ ओघ कटै है॥
बार हजार बिचार अरे जड़,
अन्त समै सब ही तजि जै है।
ताही को ध्यान प्रमानि हिये,
जो थे अब है अरु आगेऊ ह्वै है ॥ १६ ॥

कोटक इन्द्र करे जिह के,
कई कोटि उपिन्द्र बनाइ खपायो।
दानव देव फनिन्द्र धरा धर,
पच्छ पसू नहिं जाति गनायो॥
आज लगे तपु साधत हैं,
सिवऊ ब्रह्मा कछु पार न पायो।
बेद कतेब न भेद लख्यो,
जिह सोऊ गुरू गुरु मोहि बतायो ॥ १७ ॥

ध्यान लगाइ ठग्यो सब लोगन,
सीस जटा नख हाथ बढाए।
लाइ बिभूत फिर्यो मुख ऊपरि,
देव अदेव सबै डहकाए॥

लोभ के लागे फिर्यो घर ही घर,
जोग के न्यास सबै बिसराए।
लाज गई कछु काजु सर्यो नहिं,
प्रेम बिना प्रभु पान न आए॥ १८॥

काहे कउ डिम्भ करै मन मूरख,
डिम्भ करे अपनी पति ख्वै है।
काहे को लोग ठगे ठग लोगनि,
लोक गयो परलोक गवै है॥
दीन दयाल की ठौर जहाँ,
तिहि ठौर बिखै तुहि ठौर न ऐ है।
चेत रे चेत अचेत महाँ जड़,
भेख के कीने अलेख न पै है॥ १९॥

काहे कउ पूजत पाहन कउ
कछु पाहन मैं परमेसर नाही।
ताही को पूज प्रभू करि कै,
जिह पूजत ही अघ ओघ मिटाही॥
आधि बिआधि के बन्धन जेतक,
नाम के लेत सबै छुटि जाही।
ताही को ध्यानु प्रमान सदा,
इन फोकट धर्म करे फलु नाही॥ २०॥

फोकट धर्म भयो फल हीन,
जु पूज सिला जुगि कोट गवाई।
सिद्ध कहा सिल के परसे,
बल बृद्ध घटी नव निद्धि न पाई॥

आजु ही आजु समो जु बित्यो,
नहिं काजि सर्यो कछु लाजि न आई।
श्री भगवन्त भज्यो न अरे जड़,
ऐसे ही ऐस सुबैस गवाई॥ २१॥

जौ जुग तै करि है तपसा,
कछु तोहि प्रसन्न न पाहन कै है।
हाथ उठाइ भली बिध सो जड़,
तोहि कछू बरदान न दै है॥
कउन भरोस भया इह को कहु,
भीर परी नहिं आनि बचै है।
जानु रे जानु अजान हठी,
इह फोकट धर्म सु भर्म गवै है॥ २२॥

जाल बधे सब हो मृत के,
कोऊ राम रसूल न बाचन पाए।
दानव देव फनिन्द धराधर,
भूत भविख्य उपाइ मिटाए॥
अन्त मरै पछुताइ पृथी पर,
जे जग मैं अवतार कहाए।
रे मन लैल इकेल ही काल के,
लागत काहि न पाइन धाए॥ २३॥

काल हो पाइ भयो ब्रह्मा,
गहि दण्ड कमण्डल भूम भ्रमान्यो।
काल हो पाइ सदा सिव जू,
सभ देस बिदेस भया हम जान्यो॥

काल ही पाइ भयो मिट गयो,
जग याँही ते ताहि सबो पहिचान्यो ।
बेद कतेब के भेद सबै तजि,
केवल काल कृपानिधि मान्यो ॥ २४ ॥

काल गयो इन कामन सिउ जड़,
काल कृपाल हिये न चितार्‌यो ।
लाज को छाडि नृलाज अरे तज,
काजि अकाज को काज सवार्‌यो ॥
बाज बने गजराज बडे,
खर को चढ़िबो चित बीज विचार्‌यो ।
श्री भगवन्त भज्यो न अरे जड़,
लाज ही लाज तैं काजु बिगार्‌यो ॥ २५ ॥

बेद कतेब पढ़े बहुते दिन,
भेद कछू तिन को नहिं पायो ।
पूजत ठौर अनेक फिर्‌यो पर,
एक कबै हिय मैं न बसायो ॥
पाहन कौ अस्थालय कौ सिर,
न्याइ फिर्‌यो कछु हाथ न आयो ।
रे मन मूढ़ अगूढ़ प्रभू तजि,
आपन हूड़ कहा उरझायो ॥ २६ ॥

जो जुगियान के जाइ उठ आश्रम,
गोरख को तिहि जापु जपावै ।
जाइ सन्यासन के तिह कौ कहँ,
दत्त ही सत्त है मन्त्र दृढ़ावै ॥

जो कोऊ जाइ तुरक्कन मैं,
महिदीन के दीन तिसै गहि ल्यावै ।
आपहि बीच गनै करता,
करतार को भेदु न कोऊ बतावै ॥ २७ ॥
जो जुगियान के जाइ कहै,
सब जोगन को गृह माल उठै दै ।
जो परो भाजि सन्यासन के कहै,
दत्त के नाम पै धाम लुटै दै ॥
जो करि कोऊ मसन्दन सों कहै,
सरब दरब लै मोहि अबै दै ।
लेउ ही लेउ कहै सब को,
नर कोऊ न ब्रह्म बताइ हमै दै ॥ २८ ॥
जो करि सेव मसन्दन की,
कहै आनि प्रसादि सबै मुहि दीजै ।
जो कछु माल तवालय सो,
अब ही उठि भेंट हमारी ही कीजै ॥
मेरो ई ध्यान धरो निस बासुर,
भूल कै अउर को नामु न लीजै ।
दीने को नामु सुने भजि रातहि,
लीने बिना नहिं नैकु पसीजै ॥ २६ ॥
आँखन भीतरि तेल कौ डार,
सु लोगन नीरु बहाइ दिखावै ।
जो धनवानु लखै निज सेवक,
ताही परोसि प्रसादि जिमावै ॥

जो धनहीन लखै तिह देत न,
माँगन जात मुखो न दिखावै।
लूटत है पसु लोगन को,
कबहूँ न प्रमेसर के गुन गावै॥ ३०॥

आँखन मीच रहै बक की जिम,
लोगन एक प्रपञ्च दिखायो।
न्यात फिर्‌यो सिर बद्धक ज्यों,
अस ध्यान बिलोक बिड़ाल लजायो॥
लागि फिर्‌यो धन आस जितै,
तित लोक गयो परलोक गवायो।
श्री भगवन्त भज्यो न अरे जड़,
धाम के काम कहा उरझायो॥ ३१॥

फोकट कर्म दृढ़ात कहा,
इन लोगन को कोई काम न ऐ है।
भाजत का धन हेत अरे,
जम किङ्कर ते नहिं भाजन पै है॥
पुत्र कलित्र न मित्र सबै ऊहाँ,
सिक्ख सखा कोऊ साख न दै है।
चेत रे चेत अचेत महा पसु,
अन्त की बार अकेलोई जै है॥ ३२॥

तो तन त्यागत ही सुन रे जड़,
प्रेत बखान त्रिया भजि जै है।
पुत्र कलत्र सुमित्र सखा इह,
बेग निकारहु आइसु दै है॥

भउन भण्डार धरा गढ़ जेतक,
छाडत प्रान बिगान कहै है।
चेत रे चेत अचेत महा पसु,
अन्त की बार अकेलोई जै है॥ ३३॥

१ ओङ्कार सतिगुरु प्रसादि।

चरित्र नूप कुँअरि का।

[नोट—श्री गुरु गोविन्द सिंह जी का रूप अति सुन्दर और तेजोमय था। भाई नन्दलालजी ने कहा है—

बादीदह ख्वाब नाक चूँ वेरूँ बरामदी।
शरमिन्दह गस्त अज़ रुखे तो आफ़तावे सुबह॥

एक समय श्री गुरुजी किसी फ़क़ीर से मिलने गए तो वहाँ एक नूप कुँअरि नामक बड़ी अमीर और सुन्दर युवती आपको देख ऐसी मोहित हुई कि आपको वहीं घेर लिया। श्री गुरुजी का इस स्त्री के रूप और धन आदि के आगे झुक जाना तो असम्भव था ही पर आप इस भय के सामने भी न झुके जबकि नूप कुँअरि ने यह कहा कि आप और मैं इस समय अकेले हैं और मैं चीख़ पुकार कर शोर मचाऊँगी और आप पर झूठा दोष लगाऊँगी जिससे आपकी इज़्ज़त मिट्टी में मिल जायगी। अपने आचरण की पवित्रता के सामने अपनी इज़्ज़त की भी कुछ परवाह न करने वाले सतगुरु वहाँ से निर्भयता से चल निकले और

साफ़ बच कर अपने स्थान पर आ पहुँचे। इस सारी वार्त्ता को गुरुजी ने अपने "त्रिया चरित्र" ग्रन्थ में नं० २१, २२, २३ चरित्रों में चरित्रों के रूप में दर्शाया है]

दोहरा।

तीर सतुद्रव के हुतो, पुर अनन्द इक गाँउ।
नेत्र तुङ्ग के ढिग बसत, काहलूर के ठाँउ॥ ३॥
तहाँ सिक्ख साखा बहुत, आवत मोद बढ़ाइ।
मन बाँछत मुखि माँग बर, जात गृहन सुख पाइ॥ ४॥
एक त्रिया धनवन्त की, तौन नगर मैं आनि।
हेर राइ पीड़ति भई, बधी बिरह के बान॥ ५॥

चौपई।

लखि त्रिय ताहि सुभेख बनायो।
फूल पान अरु कैफ़ मँगायो॥
आगे टर ताको तिन लीना।
चित का सोक दूरि करि दीना॥ ११॥

दोहरा।

बस्त्र पहिरि बहु मोल के, अतिथ भेस कौ डारि।
तवन सेज सोभित करी, उत्तम भेख सुधारि॥ १२॥
तब तासौ त्रिय यौ कही, भोग करहु मुहि साथ।
पसु पतारि दुख दै घनौ, मैं बेची तव हाथ॥ १३॥

राइ वाच—

छन्द।

कह्यो तुहारो मानि भोग तोसौं नहिं करि हौं।
कुलि कलंक के हेत अधिक मन भीतर डरि हौं॥
छोरि ब्याहिता नारि केल तो सौं न कमाऊँ।
धरमराज की सभा ठौर कैसे करि पाऊँ॥ १७॥

कुँअरि बाच— दोहरा।

कामातुर ह्वै जो त्रिया, आवत नर के पास।
महा नरक सो डारियै, दै जो जान निरास॥ १८॥

राइ बाच—

पाइ परत मोरे सदा, पूज कहत हैं मोहि।
तासौं रीझ रम्यो चहत, लाज न आवत तोहि॥ १९॥

कुँअरि बाच—

कृष्न पूज जग के भए, कीनी रासि बनाइ।
भोग राधिका सौं करे, परे नरक नहिं जाइ॥ २०॥
पञ्च तत्त लै ब्रह्म कर, कीनी नर की देह।
किया आप ही तिन बिखै, स्त्री पुरख सनेह॥ २१॥

चौपई।

तातै आनि रमो मुहि संगा।
ब्यापत मुर तन अधिक अनंगा॥
आजु मिले तुमरे बिन मरि हौं।
बिरहानल के भीतरि जरि हौं॥ २२॥

दोहरा।

अङ्ग ते भयो अनङ्ग तौ, देत मोहि दुख आइ॥
महाँ रुद्र जू कोप करि, ताहिन दयो जराइ॥ २३॥

राइ बाच— छन्द।

धरहु धीरज मन बाल मदन तुमरौ कस करि है।
महा रुद्र कौ ध्यान धरो मन बीच सु डरि है॥
हम न तुहारे संग भोग रुचि मानि करैंगे।
त्यागि धरम की नारि तोहि कबहूँ न बरैंगे॥ २४॥

अड़िल।

कह्यो तिहारो मानि भोग तोसौं क्यों करियै।
घोर नरक के बीच जाइ परबे ते डरियै॥
तव आलिंगन करे धरम अरि कै मुहि गहि है।
हो अति अपजस की कथा जगत मोको निति कहिहै॥ २५॥
चलै निन्द की कथा बक्त्र कस तिनै दिखै हौं।
धरम राज की सभा ज्वाब कैसे करि दै हौं॥
छाडि यराना बाल ख़्याल हमरे नहिं परियै।
कही सु हम सौं कही बहुरि यह कह्यो न करियै॥ २६॥

कुँअरि वाच—

नूप कुँअरि यौं कही भोग मो सौं पिय करियै।
परो न नरक के बीच अधिक चित माहि न डरियै॥
निन्द तिहारी लोग कहा करिकै मुख करि हैं।
त्रास तिहारे सौं सु अधिक चित भोतर डरि हैं॥ २७॥
तौ करि है कोऊ निन्द कछू जब भेद लहैंगे।
जौ लखि हैं कोऊ बात त्रास ते मौन रहैंगे॥
आजु हमारे साथ मित्र रुचि सौं रति करियै।
हो नातर छाडौं टाँग तरे अब होइ निकरियै॥ २८॥

राइ वाच—

टाँग तरे सो जाइ केल कै जाहि न आवै।
बैठ निफूँसक रहै रैनि सिगरी न बजावै॥
बधे धरम के मैं न भोग तुहि साथ करत हौं।
जग अपजस के हेत अधिक चित बीच डरत हौं॥ २९॥

कुँअरिवाच—

कोटि जतन तुम करौ भजे बिनु तोहि न छोरौं।
गहि आपन पर आजु सगर तोकौ निसि तोरौं॥
मीत तिहारे हेत कासि करवत हूँ लैहौं।
हो धरमराज की सभा ज्वाब ठाढी ह्वै दैहौं॥ ३० ॥

आज पिया तव सङ्ग सेजु रुचि मान सुहै हौं।
मन भावत को भोग रुचित चित माहि कमै हौं॥
आजु सुरति सभ रैनि भोग सुन्दर तव करि हौं।
सिव बैरी को दर्प सकल मिलि तुमैं प्रहरि हौं॥ ३१ ॥

राइ बाच—

प्रथम छत्रि के धाम दियो विधि जनम हमारो।
बहुरि जगत के बीच कियो कुल अधिक उजियारो॥
बहुरि सभन मैं बैठि आपु कौं पूज कहाऊँ।
हो रमौ तुहारे साथ नीच कुल जनमहि पाऊँ॥ ३२ ॥

कुँअरि बाच—

कहा जनम की बात जनम सभ करे तिहारे।
रमौ न हम सौ आजु ऐस घटि भाग हमारे॥
बिरह तिहारे लाल बैठि पावक मो बरियै।
हो पीव हलाहल आजु मिले तुमरे बिनु मरियै॥ ३३।

छन्द।

तरुन कर्‌यो बिधि तोहि तरुनि ही देह हमारो।
लखे तुमै तन आजु मदन बसि भयो हमारो॥
मन को भरम निवारि भोग मोरे संगि करियै।
नरक परन ते नैक अपन चित बीच न डरियै॥ ३७॥

राइ बाच— दोहरा ।

पूज जानि करि जो तरुनि, सुरि कै करत पयान ।
तवनि तरुनि गुर तवन को, लागत सुता समान ॥ ३६ ॥

छन्द ।

कहा तरुनि सौ प्रीति नेह नहीं ओर निबाहहि ।
एक पुरख कौ छाडि और सुन्दर नर चाहहि ॥
अधिक तरुन रुचि मानि तरुनि जासौ हित करही ।
हो तुरत मूत्र को धाम नगन आगे कर धरही ॥ ३९ ॥

अड़िल छन्द ।

धन्य तरुनि तव रूप धन्य पितु मात तिहारो ।
धन्य तिहारो देस धन्य प्रतिपालन हारो ॥
धन्य कुअरि तव वक्रत अधिक जामै छबि छाजै ।
हो जल सूरज अरु चन्द्र दर्प कंद्रप लखि भाजै ॥ ४३ ॥
सुभ सुहाग तन भरे चारु चंचल चखु सोहहि ।
खग मृग जच्छ भुजंग असुर सुर नर मुनि मोहहि ॥
सिव सनकादि कथ कित रहत लखि नेत्र तिहारे ।
हो अति अचरज की बात चुभत नहिं हदै हमारे ॥ ४४ ॥

कबि बाच— दोहरा ।

बहुर त्रिया तिह राइ सौं, यौं बच कह्यो सुनाइ ।
आजु भोग तो सौ करौं, कै मरिहौं बिखु खाइ ॥ ४६ ॥

राइ बाच—

बिसिखपरा बरि नैन तव, बिधना धरे बनाइ ।
लाज कौच मोकौं दयो, चुभत न तातें आइ ॥ ४७ ॥
बने ठने आवत घने, हेरत हरत ज्ञान ।
भोग करन कौ कछु नहीं, डहकू बेर समान ॥ ४८ ॥

छन्द ।

सुधि जब ते हम धरी बचन गुरु दए हमारे ।
पूत इहै प्रण तोहि प्राण जब लग घट थारे ॥
निज नारी के साथ नेह तुम नित्य बढैयहु ।
पर नारी की सेज भूलि सुपने हूँ न जैयहु ॥ ५१ ॥
पर नारी के भजे सहस बासव भग पाए ।
पर नारी के भजे चन्द्र कालंक लगाए ॥
पर नारी के हेत सीस दस सीस गवायो ।
हो पर नारी के हेत कटक कवरन कौ घायो ॥ ५२ ॥
पर नारी सौ नेहु छुरी पैनी करि जानहु ।
पर नारी के भजे काल ब्याप्यो तन मानहु ॥
अधिक हरीफी जान भोग पर त्रिया जु करही ।
हो अन्त स्त्रान की मृत्यु हाथ लेंडो के मरही ॥ ५३ ॥
बाल हमारे पास देस देसन त्रिय आवहि ।
मन बाछत बर माँगि जानि गुर सीस झुकावहि ॥
सिख्य पुत्र त्रिय सुता जानि अपने चित धरियै ।
हो कहु सुन्दरि तिह साथ गवन कैसे कर करियै ॥ ५४ ॥

कुँअरि बाच—　चौपई ।

बचन सुनत क्रुद्धित त्रिय भई ।
जरि बरि आठ टूक ह्वै गई ॥
अबही चोरि चोरि कहि उठि हौं ।
तुहि कौं पकरि मारि ही सुटि हौं ॥ ५५ ॥

दोहरा ।

हसि खेलो सुख सौं रमो, कहा करत हो रोख ।
नैन रहे निहुराइ क्यों, हेरत लगत न दोख ॥ ५६ ॥

राइ बाच—

याते हम हेरत नहीं, सुन सखि हमरे बैन।
लखे लगन लगि जाइ जिन, बडे बिरहिया नैन ॥ ५७ ॥

छप्पै छन्द।

दिजन दीजियहु दान दुर्जन कह द्रुस्टि दिखैयहु।
सुखी राखियहु साथि सत्रु सिर खड़ग बजैयहु ॥
लोक लाज कउँ छाडि कछू कारज नहि करियहु।
पर नारी की सेज पाँव सुपने हूँ न धरियहु ॥
गुर जबते मुहि कह्यो इहै प्रण लयो सुधारै।
हो पर धन पाहन तुल्य त्रिया पर मात हमारै ॥ ५८ ॥

कबि बाच— दोहरा।

सुनत राव को बच स्रवन, त्रिय मन अधिक रिसाइ।
चोर चोर कहि कै उठी, सिख्यन दियो जगाइ ॥ ५६ ॥
सुनत चोर को बच स्रवन, अधिक डरयो नर नाहि।
पन्हीं पामरी तजि भज्यो, सुध न रही मन माहि ॥
॥ ६० ॥ २१ ॥ ४३८ ॥

चोरि सुनत जागे सभै, भजै न दीना राइ।
कदम पाँच सातक लगे, मिले सिताबी आइ ॥ २ ॥
आगे पाछे दाहने, घेर दसो दिस लीन।
पैंड भजन कौ ना रह्यो, राइ जतन यौं कीन ॥ ४ ॥
वाकी कर द्वारी धरीं, पगिया लई उतारि।
चोर चोर कर तिह गह्यो, द्वैक मुतहरी झारि ॥ ५ ॥
लगे मुतहरी के गिर्‌यो, भूमि मूर्छना खाइ।
भेव न काहूँ नर लख्यो, मुसकैं लई चढ़ाइ ॥ ६ ॥

लात मुस्ट बाजन लगी, सिख्य पहुँचे आइ।
भ्रात भ्रात त्रिय कहि रही, कोउ न सक्यो छुराइ ॥ ७ ॥

चौपई।

इह छल खेलि राइ भज आयो।
बन्द साल त्रिय भ्रात पठायो ॥
सिख्यन भेद अभेद न पायो।
वाही कौ तसकर ठहरायो ॥६॥२२॥४५७॥
भयो प्रात सभ ही जन जागे।
अपने अपने कारज लागे ॥
राइ भवन ते बाहर आयो।
सभा बैठि दीवान लगायो ॥ १ ॥

दोहरा।

प्रात भए तवनै त्रिया, हित तजि रिसि उपजाइ।
पन्हीं पामरी जो हुते, सभहिन दए दिखाइ ॥ २ ॥

चौपई।

राइ सभा महि बचन उचारे।
पन्हीं पामरी हरे हमारे ॥
ताँहि सिख्य जो हमैं बतावै।
ताके काल निकट नहिं आवै ॥ ३ ॥

दोहरा।

बचन सुनत गुरु बक्रत ते, सिख्य न सके दुराइ।
पन्हीं पामरी के सहित, सो त्रिय दई बताइ ॥ ४ ॥

चौपई।

तबै राइ यौं बचन उचारे।
ताहि ल्यावहु तिह तीर हमारे ॥

पन्हीं पामरी सँग लै ऐयहु।
मोरि कहे बिनु त्रास न दैयहु ॥ ५ ॥

दोहरा।

सुनत राइ के बचन कौ, लोगि परे अरराइ।
पन्हीं पामरी त्रिय सहित, ल्यावत भए बनाइ ॥ ६ ॥

अड़िल।

कहु सुन्दरि किह काज बस्त्र तैं हरे हमारे।
देख भटन की भीरि त्रास उपज्यो न तिहारे॥
जो चोरी जन करै कहो ताकौं क्या करियै।
हो नारि जानि कै टरौं न तरजिय ते तुहि मरियै ॥ ७ ॥

दोहरा।

पर पियरी मुख पर गई, नैन रही निहुराइ।
धरक धरक छतिया करै, बचन न भाख्यो जाइ॥ ८ ॥

अड़िल।

हम पूछहिंगे याहि न तुम कछु भाखियो।
याही के घर माँहि भली बिधि राखियो॥
निरनौ करि हैं एक इकान्त बुलाइकै।
हो तब दैहैं इह जान हृदै सुख पाइकै॥ ९ ॥

चौपई।

प्रात भयो त्रिय बहुरि बुलाई।
सकल कथा कहि ताँहि सुनाई॥
तुम कुपि हम परि चरित बनायो।
हम हूँ तुम कह चरित दिखायो ॥ १० ॥

ताको भ्रात बन्दि ते छोर्यो।
भाँति भाँति तिह त्रियहि निहोर्यो॥
बहुरि ऐस जिय कबहूँ न धरियहु।
मो अपराध छिमापन करियहु॥ ११॥

दोहरा।

छिमा करहु अब त्रिय हमैं, बहुरि न करियहु राँधि।
बीस सहंस टका तिसै, दई छिमाहो बाँधि॥
॥ १२॥ २३॥ ४३६॥

१ ओंकार सतिगुरु प्रसादि

श्री रनखम्भ कला का चरित्र।

चौपई।

सुमति सैन इक नृपति सुना बर।
दुतिय दिवाकर किधौं किरणि धर॥
समरमती रानी गृह ताके।
सुरी आसुरी सम नहिं जाके॥ १॥
श्री रनखम्भ कला दुहिता तिह।
जीति लई ससि अंस कला जिह॥
निरखि भान जिह प्रभा रहत दबि।
सुरी आसुरीन कोनहि सम छबि॥ २॥

दोहरा।

तरुनि भई तरुनी जबै, अधिक सुखन के संग।
लरिका पन मिटि जात भयो, दुन्दभि दियो अनंग॥ ३॥

चौपई ।

चारि भ्रात ताके बलवाना ।
सूरबीर सभ सस्त्र निधाना ॥
तेजवान दुति मान अतुल बल ।
अरि अनेक जीते जिह दलि मलि ॥ ६ ॥

चारों कुअर पढ़न के काजा ।
दिज इक बोलि पठायो राजा ॥
सुता सहित सुत सौंपे तिह घर ।
कछु बिद्या दिजि देहु कृपाकर ॥ ७ ॥

जब ते तहँ पढ़बे कहँ आवैं ।
अपनो बिप कह सीस झुकावैं ॥
जो सिख्या दिज देत सु लेहीं ।
अमित दरब पण्डित कहँ देहीं ॥ ८ ॥

इक दिन कुअरि अगमने गई ।
दिज कहँ सीस झुकावत भई ॥
सालिग्राम पूजत था दिजबर ।
भाँति भाँति तिह सीस न्याइ करि ॥ ६ ॥

ताकौ निरखि कुअरि मुसकानी ।
सो प्रतमा पाहन पहिचानी ॥
ताहि कहा पूजत किह निमितिहँ ।
सिर नावत कर जोरि काज जिहँ ॥ १० ॥

दिज वाच—

सालग्राम ठाकुर ए बाला ।
पूजत जिनै बडे नर पाला ॥

तैं अज्ञान इह कहा पछानै।
परमेस्वर कहँ पाहन जानै॥ ११॥

राजा सुता बाच— सवैया।

ताहि पछानत है न महाँ जड़, जाको प्रताप तिहूँ पुर माहीं।
पूजत है प्रभु कै तिह कौ, जिनके परसे परलोक पराहीं॥
पाप करो परमारथ कै, जिहँ पापन ते अति पाप डराहीं।
पाइ परो परमेस्वर के पसु, पाहन मैं परमेस्वर नाहीं॥ १२॥

बिजै छन्द।

जीवन मैं जल मैं थल मैं,
सभ रूपन मैं सभ भूपन माँहीं।
सूरज मैं ससि मैं नभ मैं,
जहँ हेरौ तहाँ चित्त लाइ तहाँ हीं॥
पावक मैं अरु पौन हूँ मैं,
पृथ्वी तल मैं सु कहाँ नहिं जाँहीं।
ब्यापक है सभ ही के बिखै,
कछु पाहन मैं परमेस्वर नाँहीं॥ १३॥
कागज दीप समै करिकै अरु,
सात समुद्रन की मसुकैयै।
काटि बनास्पती सिगरी,
लिखबे हूँ कौ लेखन काज बनैयै॥
सारस्वती बक्ता करिकै,
सभ जीवन ते जुग साठि लिखैयै।
जो प्रभु पायतु है नहिं कैसे हूँ,
सो जड़ पाहन मैं ठहरैयै॥ १४॥

दोहरा ।

जग मैं आप कहावई, पण्डित सुघर सुचेत ।
पाहन की पूजा करै, याते लगत अचेत ॥ १६ ॥

चौपई ।

चित भीतर आसा धन धारै ।
सिव सिव सिव मुख ते उच्चारै ॥
अधिक डिम्भ कर जगहि दिखावै ।
द्वार द्वार माँगत न लजावै ॥ १७ ॥

अड़िल ।

नाक मूँदि करि चारि घरी ठाढे रहैं ।
सिव सिव सिव ह्वै एक चरन स्थित कहैं ॥
जो कोऊ पैसा एक देत करि आइकै ।
हो दाँतन लेत उठाइ सिवहिं बिसराइकै ॥ १८ ॥

कवित्त ।

औरन उपदेस करै आपु ध्यान कौ न धरै,
लोगन को सदा त्याग धन को द्रढ़ात है ।
तेही धन लोभ ऊच नीचन के द्वार द्वार,
लाज कौ त्यागि जेहीं तेही पैघी घात है ॥
कहत पवित्र हम, रहत अपवित्र खरे,
चाकरी मलेच्छन की कै कै टूक खात है ।
बडे असन्तोखी हैं कहावत सन्तोखी महाँ,
एक द्वार छाडि माँगि द्वारे द्वार जात है ॥ १६ ॥
माटी के सिव बनाए पूजि कै बहाइ आए,
आइकै बनाए फेरि माटी के सुधारि कै ।

ताके पाइ परयो माथो धरी द्वै रगरयो ऐरे,
तामैं कहा है रे देहै तोहि को बिचारि कै ॥
लिङ्ग की तू पूजा करै सिम्भु जानि पाइ परै,
सोई अन्त दैहै तेरे कर मैं निकारि कै।
दुहिता को दैहै की तू आपन चबै है ताकौ,
योंही तोहि मारि है रे सदासिव ख्वार कै ॥२०॥

बिजै छन्द।

पाहन कौ सिव तू जौ कहै पसु,
याते कछू तुहि हाथ न ऐ है।
तिर्जक जोनि जु आप परा,
हसि कै तुहि कौ कहु का बर दै है॥
आपन सो करि है कबहूँ तुहि,
पाहन की पदवी तब पै है।
जानु रे जानु अजान महाँ,
फिरि जान गई कछु जानि न जै है ॥ २१ ॥

द्वैक पुरानन कौ पढ़ि कै तुम,
फूलि गए दिज जू जिय माही।
सो न पुरान पढ़ा जिह के,
इह ठौर पढ़े सभ पाप पराही॥
डिम्भ दिखाइ करो तपसा,
दिन रैन बसै जियरा धन माही।
मूरख लोग प्रमान करैं,
इन बातन कौ हम मानत नाही ॥ २३ ॥

दिज बाच—

चौपई।

कहा बिप्र सुनु राजदुलारी।
तैं सिव की महिमा न बिचारी॥
ब्रह्मा बिसन रुद्र जू देवा।
इनकी सदा कीजियै सेवा॥ २५॥
तैं याके भेवहि न पछानै।
महाँ मूढ इह भाँति बखानै॥
इनकौ परम पुरातन जानहु।
परम पुरख मन महि पहिचानहु॥ २६॥
हम हैं कुअरि विप्र ब्रत धारी।
ऊच नीच सभ के हितकारी॥
जिसी किसी कह मन्त्र सिखावैं।
महाँ कृपन ते दान करावैं॥ २७॥

कुमरि बाच—

मन्त्र देत सिख अपन करन हित।
ज्यों त्यों भेंट लेत तातें बित॥
सत्य बात ताकह न सिखावहु।
ताँहि लोक परलोक गवावहु॥ २८॥
सुनहु बिप्र तुम मन्त्र देत जिह।
लूट लेत तिहि घर बिधि जिह किह॥
ताकह कछू ज्ञान नहिं आवै।
मूरख अपना मूँड मुँडावै॥ २९॥
तिह तुम कहहु मन्त्र सिधि है है।
महादेव तो कौ बरु दै है॥

जब ताते नहिं होत मन्त्र सिधि।
तब तुम वचन कहत हो इह बिधि ॥ ३० ॥
कछू कुक्रिया तुम ते भयो।
ताँते दरस न सिवजू दयो ॥
अब तैं पुन्य दान दिज करु रे।
पुनि सिव के मन्त्रहि अनुसरु रे ॥ ३१ ॥
उलटो डण्ड तिसी ते लेही।
पुनि तिह मन्त्र रुद्र को देही ॥
भाँति भाँति ताकौ भटकावै।
अन्त बार इमि भाखि सुनावै ॥ ३२ ॥
तोते कछु अच्छर रहि गयो।
कै कछु भंग क्रिया ते भयो ॥
ताते तुहि बरु रुद्र न दीना।
पुन्य दान चहियत पुनि कीना ॥ ३३ ॥
इहि बिधि मन्त्र सिखावत ताको।
लूटा चहत बिप्र घर जाको ॥
जब बहु दरब रहित है जाई।
और धाम तब चलत तकाई ॥ ३४ ॥

दोहरा।

मन्त्र जन्त्र अरु तन्त्र सिधि, जौ इन महि कछु होइ।
हजरति है आपहि रहहि, माँगत फिरत न कोइ ॥ ३५ ॥

दिज बाच—

चौपई।

सुनि ए बचन मिस्र रिसि भरा।
धिक धिक ताकहि बचन उचरा ॥

तैं हमरी बातन कहा जानै।
भाँग खाइ कै चैन प्रमानै ॥ ३६ ॥

कुआरि बाच—

सुनो मिस्र तुम बात न जानत।
अहंकार के बचन प्रमानत ॥
भाँग पीए बुधि जाति न हरी।
बिन पीए तब बुधि कह परी ॥ ३७ ॥
तुम आपन स्याने कहलावत।
कबहीं भूलि न भाँग चढ़ावत ॥
जब तुम जाहु काज भिच्छा के।
फर हो ख्वार रहत गृह जाके ॥ ३८ ॥
जिह धन को तुम त्याग दिखावत।
दर दर तिह माँगन कस जावत ॥
महाँ मूढ़ राजन के पासन।
लेत फिरत हो मिस्रजू कन कन ॥ ३९ ॥
तुम जग महि त्यागी कहलावत।
सभ लोगन कह त्याग दृढ़ावत ॥
मन महिं दरब ठगन की आसा।
द्वार द्वार डोलत इह प्यासा ॥ ४१ ॥

अड़िल।

बेद ब्याकरन शास्त्र सिंमृत इम उचरै।
जिनि किसहू ते एक टका मो कौ भरै ॥
जे तिन को कछु देत स्तुति ताकी करै।
हो जो धन देत न तिनै निन्द ताकी करै ॥ ४२ ॥

चौपई ।

दुहुँअन सम जोऊ करि जानै ।
निन्द्या उस्तति सम करि मानै ॥
हम ताही कह ब्रह्म पछानहि ।
वाही कहि दिज कै अनुमानहि ॥ ४५ ॥
धन के काज करत सभ काजा ।
ऊच नीच राना अरु राजा ॥
ख्याल 'काल को किनूँ न पायो ।
जिन इह चौदहँ लोक बनायो ॥ ४७ ॥

कवित्त ।

एही धन लोभ ते पढ़त व्याकरन सभै,
एही धन लोभ ते पुरान हाथ धरे हैं ।
धन ही के लोभ देस छाँडि परदेस बसे,
तात अरु मात के दरस हूँ न करे हैं ॥
ऊचे द्रुमसाल तहाँ लाँबे बट ताल जहाँ,
तिन मैं सिधात हैं न जी मैं नैकु डरे हैं ।
धन के अनुरागी हैं कहावत त्यागी आपु,
कासी बीच जए ते कमाऊ जाइ मरे हैं ॥ ४६ ॥

बिजै छन्द ।

गत मान कहावत गात सभै,
कछु जानै न बात गता गत है ।
दुति मान घने बलवान बडे,
हम जानत जोग मछे जत है ॥

पाहन के कहैं बीच रहीं सिव,
जानै न मूढ़ महाँ मत है ।
तुमहूँन बिचार सुजान कहो,
इन मैं कहाँ पारबती पति है ॥ ५५ ॥

दोहरा ।

पाहन की पूजा करैं, जे हैं अधिक अचेत ।
भाँग न एते पर भखैं, जानत आप सुचेत ॥ ५८ ॥

दिज बाच— चौपई ।

सुन पुत्री तैं बात न जानै ।
सिव कहँ करि पाहन पहिचानै ॥
बिप्रन कौं सभ ही सिर न्यावैं ।
चरनोदक लै माथ चढ़ावैं ॥ ७१ ॥
पूजा करत सकल जग इन की ।
निन्द्या करत मूढ़ तैं जिन की ॥
ए हैं परम पुरातन दिजबर ।
सदा सराहत जिन कह नृपबर ॥ ७२ ॥

कुअरि बाच—

सुन मूरख दिज तैं नहिं जानो ।
परम जोत पाहन पहिचानो ॥
इन महिं परम पुरख तैं जाना ।
तजि स्यानप ह्वै गयो अयाना ॥ ७३ ॥

अड़िल ।

ए बिद्या बल करहि जोग की बात न जानै ।
ए सुचेत करि रहहि हमनि आचेत प्रमानै ॥

कहा भयो जौ भाँग भूलि भौंहू नहिं खाई।
हो निज तन ते बिसम्भार रहत सम लखत लुकाई ॥८०॥
भाँग खाइ भट भिड़हिं गजन के दाँत उपारहिं।
सिमटि साँग संग्रहहिं सार सन्मुख ह्वै भारहिं॥
तैं मूजी पी भाँग कहो का काज सवरि है।
हो ह्वै कै मृतक समान जाइ औंधे मुख परि है॥ ८१॥

भुजंग छंद।

सुनौ मिस्र सिच्छा इनो कों सु दीजै।
महाँ भूठ ते राखि कै मोहि लीजै।
इतो भूठ कै औरनो कौं दृढ़ावौ।
कहा चाम के दाम कै कै चलावौ॥ ८२॥
महाँ घोरई नरक के बीच जैहो।
कि चण्डाल की जोनि मैं अवतरै हो॥
कि टाँगे मरोगे बधे मृत्यु साला।
सनै बन्धु पुत्रा कलत्रान वाला॥ ८३॥
कहो मिस्र आगे कहा ज्वाब दैहो।
जबै काल के जाल मैं फाँसि जैहो॥
कहो कौन सो पाठ कै होत तहाँ ही।
तऊ लिंग पूजा करौगे उहाँही॥ ८४॥
तहाँ रुद्र ऐ हैं कि श्री कृष्न ऐ हैं।
जहाँ बाँधि श्री काल तोको चलै हैं॥
किधौं आनि कै राम ह्वै हैं सहाई।
जहाँ पुत्र माता न ताता न भाई॥ ८५॥
महाकाल जू को सदा सीस न्यैयै।
पुरी चौदहूँ त्रास जाके त्रसैयै॥

घनी बार लौं पन्थ चारौं भ्रमाना।
महाकाल ही कै गुरू कै पछाना ॥ ८९ ॥
मुरीद हौं उसी की वहै पीर मेरो।
उसी का किया आपना जीव चेरो॥
तिसी का किया बालका मैं कहावौं।
उहो मोहि राखा उसी कौ धिआवौं॥ ९० ॥

चौपई।

दिज हम महाकाल कौ मानैं।
पाहन मैं मन कौ नहिं आनैं॥
पाहन को पाहन करि जानत।
ताँतें बुरो लोग ए मानत ॥ ९१ ॥
झूठा कह झूठा हम कह हैं।
जौ सभ लोग मनैं कुररै हैं॥
हम काहूँ की कानि न राखैं।
सत्य बचन मुख ऊपर भाखैं ॥ ९२ ॥
सुनु दिज तुम धन के लब लागे।
माँगत फिरत सभन के आगे॥
अपने मन भीतर न लजावहु।
इक टक ह्वै हरि ध्यान न लावहु ॥ ९३ ॥

दिज बाच—

तब जिज बोला तैं क्या जानै।
सम्भू को पाहन करि मानै॥
जौ इन कौ करि आन बखानै।
ताकौ ब्रह्म पातकी जानै ॥ ९४ ॥

जो इन कहँ कटु बचन उचारैं।
ताकौं महाँ नरक बिथि डारैं॥
इनकी सदा कीजियै सेवा।
ए हैं परम पुरातन देवा॥९५॥

कुमरि बाच—

एकै महाकाल हम मानैं।
महाँ रुद्र कह कछू न जानैं॥
ब्रह्म बिसन की सेव न करहीं।
तिन ते हम कबहूँ नहिं डरहीं॥९६॥
ब्रह्म बिसन जिन पुरख उचारो।
ताकौ मृत्यु जानियै मारो॥
जिन नर 'काल पुरख को ध्यायो।
ताके निकट काल नहि आयो॥९७॥
तिन के रिद्धि सिद्धि सभ घर मौ।
को बिदि सभही रहत हुनर मौ॥
भाँति भाँति धन भरे भण्डारू।
जिन का आवत वार न पारू॥९९॥
जब तोको दिज काल सतै है।
तब तू को पुस्तक कर लै है॥
भगवत पढ़ो कि गीता कहि हो।
रामहि पकरि कि सिव कहँ गहि हो॥१०१॥
जे तुम परम पुरख ठहिराए।
ते सभ डण्ड काल के घाए॥
काल डण्ड बिन बचा न कोई।
सिव बिरञ्च बिसनिन्द्रम सोई॥१०२॥

जैसि जूनि इक दैत बखनियत ।
त्यों इक जूनि देवता जनियत ॥
जैसे हिन्दु आन तुरकाना ।
सभहिन सीस काल जरवाना ॥ १०३ ॥
कबहूँ दैत देवतन मारैं ।
कबहूँ दैतन देव संहारैं ॥
देव दैत जिन दोउ संहारा ।
वहै पुरख प्रतिपाल हमारा ॥ १०४ ॥

अड़िल ।

इन्द्र उपिन्द्र दनिन्द्रहि जौन संहारयो ।
चन्द्र कुबेर जलिन्द्र अहिन्द्रहि मारयो ॥
पुरी चौदहूँ चक्र जवन सुत लीजियै ।
हो नमस्कार ताही कौ गुरु करि कीजियै ॥ १०५ ॥

चौपई ।

दिज बाच—

बहु बिधि बिप्रहि कौ समझायो ।
पुनि मिस्रहि अस भाखि सुनायो ॥
जे पाहिन की पूजा करि हैं ।
ताके पाप सकल सिव हरि हैं ॥ १०६ ॥
जे नर सालिग्राम कह स्यै हैं ।
ताके सकल पाप का छै हैं ॥
जो इह छाडि अवर कह स्यै हैं ।
ते नर महाँ नरक महि जै हैं ॥ १०७ ॥
जे नर कछु धन बिप्रहि दै हैं
आगे माँग दस गुनो लै हैं ॥

जो बिप्रन बिनु अन्तहि देही।
ताको कछु सुफलै नहिं सेई ॥ १०८ ॥

कबियो बाच— अड़िल।

तबै कुअरि प्रतिमा सिव की कर मैं लई।
हसि हसि करि दिज के मुख कसि कसि कै दई॥
सालिग्राम भे दांति फोरि सभ ही दीए।
हो छीनि छानि करि बस्त्र मिस्र के सभ लीए॥ १०६॥

कुअरि बाच—

कहो मिस्र अब रुद्र तिहारो कहँ गयो।
जिह सेवत थो सदा दांत छै तिन कियो॥
जिह लिंगह को जपते काल बितायो।
हो अन्त काल सो तुमरे मुख महि आयो॥ ११०॥

कबियो बाच— चौपई।

ताको दरबु छीन जो लियो।
सो सभ दान दिजन करि दियो॥
कह्यो मिस्र कछु चिन्त न कर हो।
दान दस गुनो आगे फर हो॥ ११ ॥

कुँअरि बाच— कबित्त।

औरन को कहतु लुटावो तुम खाहु धन,
आपु पहिती मैं डारि खात न बिसारि हैं।
बड़े ही प्रपञ्ची परपञ्चन को लिये फिरैं,
दिन ही मैं लोगन को लूटत बजार हैं॥
हाथ ते न कौड़ी देत कौड़ी कौड़ी माँग लेत,
पुत्री कै कहतु तासों करैं बिभचार हैं।

लोभता के जए हैं कि ममता के भए हैं ए,
सूमता के पुत्र कैधौं दरिद्रावतार हैं ॥ ११२ ॥

चौपई।

जौ इन मन्त्र जन्त्र सिधि होई।
दर दर भीख न माँगै कोई ॥
एकै मुख तें मन्त्र उच्चारैं।
धन सौं सकल धाम भर डारैं ॥ ११४ ॥
राम कृष्न ए जिनै बखानै।
सिव ब्रह्मा ए जाहि प्रमानै ॥
ते सभही श्री काल संहारे।
काल पाइ कै बहुरि सवारे ॥ ११५ ॥
केते रामचन्द अरु कृष्ना।
केते चतुरानन सिव बिसना ॥
चन्द सूरज ए कवन विचारे।
पानी भरत काल के द्वारे ॥ ११६ ॥

दोहरा।

स्राप राछसी के दए, जो भयो पाहन जाइ।
ताहि कहत परमेस्र तैं, मन महिं नहीं लजाइ ॥ ११८ ॥

चौपई।

दिज बाच—

तब दिज अधिक कोप है गयो।
भरभराइ ठाढा उठि भयो ॥
अब मैं इह राजा पै जैहौं।
तहीं बाँधि करि तोहि मंगैहौं ॥ ११६ ॥

कबियो बाच—

तब तिन कुँअरि द्विजहि गहि लिया।
डार नदी के भीतर दिया॥
गोता पकरि आठ सै दीना।
ताँहि पवित्र भलो बिधि कीना॥ १२०॥

कुअरि बाच—

कही कुँअरि पितु पहि मैं जैहौं।
तैं मुहि डारा हाथ बतैहौं॥
तेरे दोनों हाथ कटाऊँ।
तौ राजा की सुता कहाऊँ॥ १२१॥

द्विज बाच—

इह सुनि बात मिस्र डरपयो।
लागत पाइ कुअरि के भयो॥
सोउ करौं तुम जु मुहि उचारो।
तुम निजु जिय ते कोप निवारो॥ १२२॥

कुअरि बाच—

तुम कहियहु मैं प्रथम अन्हायो।
धन निमिति मैं दरब लुटायो॥
पाहन की पूजा नहिं करियै।
महाकाल के पाइन परियै॥ १२३॥

कबियो बाच—

तब द्विज महाकाल को ध्यायो।
सरिता महिं पाहनन बहायो॥
दूजे कान न किनहूँ जाना।
कहा मिस्र पर हाल बिहाना॥ १२४॥
१॥ २६६॥ ५१६७॥

१ ओंकार सतिगुरु प्रसादि ।

बिनती ।

चौपई ।

धन्य धन्य लोगन के राजा ।
दुष्टन दाह गरीब निवाजा ॥
अखिल भवन के सिरजनहारे ।
दास जानि मुहि लेहु उबारे ॥ ३७६ ॥
हमरी करहु हाथ दै रच्छा ।
पूरन होइ चित्त की इच्छा ॥
तव चरनन मन रहै हमारा ।
अपना जान करो प्रतिपारा ॥ ३७७ ॥
हमरे दुष्ट सभै तुम घावहु ।
आपु हाथ दै मोहि बचावहु ॥
सुखी बसै मोरो परिवारा ।
सेवक सिख्य सभै करतारा ॥ ३७८ ॥
मो रच्छा निजु कर दै करियै ।
सभ बैरिन को आज संहरियै ॥
पूरन होइ हमारी आसा ।
तोरि भजन की रहै प्यासा ॥ ३७९ ॥
तुमहिं छाँडि कोइ अवर न ध्याऊँ ।
जो बर चहौं सु तुम ते पाऊँ ॥
सेवक सिख्य हमारे तारियहि ।
चुनि चुनि सत्रु हमारे मारियहि ॥ ३८० ॥

आपु हाथ दै मुझै उबरियै।
मरन काल का त्रास निवरियै॥
हूजो सदा हमारे पच्छा।
श्री असिधुज जू करियहु रच्छा॥ ३८१॥

राखि लेहु मुहि राखनहारे।
साहिब सन्त सहाइ प्यारे॥
दीनबन्धु दुष्टन के हन्ता।
तुम हो पुरी चतुर्दस कन्ता॥ ३८२॥

काल पाइ ब्रह्मा बपु धरा।
काल पाइ सिव जू अवतरा॥
काल पाइ कर बिसन प्रकासा।
सकल काल का किया तमासा॥ ३८३॥

जवन काल जोगी सिव कीयो।
बेद राज ब्रह्मा जू थीयो॥
जवन काल सभ लोक सवारा।
नमस्कार है ताहि हमारा॥ ३८४॥

जवन काल सभ जगत बनायो।
देव दैत्य जच्छन उपजायो॥
आदि अन्ति एकै अवतारा।
सोई गुरु समझियहु हमारा॥ ३८५॥

नमस्कार तिसही को हमारी।
सकल प्रजा जिन आप सवारी॥
सिवकन को सवगुन सुख दीयो।
सत्रुन को पल मो बध कीयो॥ ३८६॥

घट घट के अन्तर की जानत।
भले बुरे की पीर पछानत॥
चींटी ते कुञ्जर अस्थूला।
सभ पर कृपा द्रृष्टि कर फूला॥ ३८७॥

सन्तन दुख पाए ते दुखी।
सुख पाए साधन के सुखी॥
एक एक की पीर पछानै।
घट घट के पट पट की जानै॥ ३८८॥

जब उदकरख करा करतारा।
प्रजा धरत तब देह अपारा॥
जब आकरख करत हो कबहूँ।
तुम मैं मिलत देह धर सबहूँ॥ ३८९॥

जेते बदन सृष्टि सब धारैं।
आप आपनी बूझि उचारैं॥
तुम सभ ही ते रहत निरालम।
जानत बेद भेद अर आलम॥ ३९०॥

निरङ्कार निर्विकार नृलम्भ।
आदि अनील अनादि असम्भ॥
ताका मूढ़ उचारत भेदा।
जाको भेव न पावत बेदा॥ ३९१॥

ताको करि पाहन अनुमानत।
महा मूढ़ कछु भेद न जानत॥
महाँदेव को कहत सदा सिव।
निरङ्कार का चीनत नहिं भिव॥ ३९२॥

आपु आपुनी बुद्धि है जेती।
बरनत भिन्न भिन्न तुहि तेती॥
तुमरा लखा न जाइ पसारा।
किह बिधि सजा प्रथम संसारा॥ ३६३॥

एकै रूप अनूप सरूपा।
रङ्क भयो राव कहीं भूपा॥
अण्डज जेरज सेतज कीनी।
उतभुज खानि बहुरि रचि दीनो॥ ३६४॥

कहूँ फूलि राजा है बैठा।
कहूँ सिमटि भयो सङ्कर इकैठा॥
सगरी सृष्टि दिखाइ अचम्भव।
आदि जुगादि सरूप सुयम्भव॥ ३६५॥

अब रच्छा मेरी तुम करो।
सिख्य उबार असिख्य संहरो॥
दुष्ट जिते उठवत उतपाता।
सकल मलेच्छ करो रण घाता॥ ३६६॥

जे असिधुज तव सरनी परे।
तिनके दुष्ट दुखित है मरे॥
पुरख जवन पगु परे तिहारे।
तिनके तुम संकट सभ टारे॥ ३६७॥

जो कलि कौ इक बार धिऐ है।
ताके काल निकट नहिं ऐ है॥
रच्छा होइ ताहि सभ काला।
दुष्ट अरिष्ट टरे ततकाला॥ ३६८॥

कृपा दृष्टि तव जाँहिं निहरिहो।
ताके ताप तनक महि हरि हो॥
ऋद्धि सिद्धि घर मों सभ होई।
दुष्ट छाह छ्वै सकै न कोई॥ ३९९॥

एक बार जिन तुम्हैं सँभारा।
काल फाँस ते ताहि उबारा॥
जिन नर नाम तिहारो कहा।
दारिद दुष्ट दोख ते रहा॥ ४००॥

खड्ग केत मैं सरनि तिहारी।
आपु हाथ दै लेहु उबारी॥
सरब ठौर मों होहु सहाई।
दुष्ट दोख ते लेहु बचाई॥४०१॥७५५१॥

दरबारी कवियों की रचनाएँ ।

अब आगे बरनन करौं, कवि जि रहैं गुरु पास ।
सुजस कबित्तन महिं करयो, लेत भए धन रास ॥
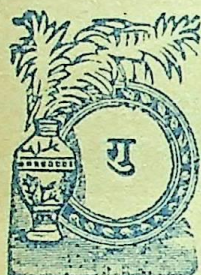
रुजी के दरबार में ५२ कवि रहते थे। यह गिन्ती घटती बढ़ती भी रहती थी। उन सब कवियों के नाम इस प्रकार हैं। अचल दास, अणी राय, अमृत राय, अली हुसैन, अल्लू, आलम शाह, आसासिंह, ईश्वरदास, उदयराय, कलुआ, कुवरेष, ख़ान चन्द, गुणिया, गुरुदास, गोपाल, चन्द, चन्दह, जमाल, टहकन, दयासिंह, धर्मचन्द, धर्मसिंह, धन्नासिंह, ध्यानसिंह, नन्दलाल, नन्दसिंह, नानू, निश्चलदास, निहालचन्द, पिण्डीमल, बल्लभदास, बल्लू, बिधीचन्द, बृया, ब्रजलाल, बुलन्द, मथुरादास, मदनगिरि, मदनसिंह, मद्धू, मल्लू, मानचन्द, मानदास, मालासिंह, मङ्गल, रामचन्द, रावल, रोशनसिंह, लक्खासिंह, सारदा, सुक्खासिंह, सुकदेव, सुक्खू सुखिया, सुदामा, सुन्दर, सेनापति, सोहन, हंसराम, हीर ।

यह सारे कवि प्रत्येक विषय पर सुन्दर कविता रचा करते थे। यह सारी कवितायें एक जगह इकट्ठी कर गुरुजी ने उस विशाल ग्रन्थ का नाम विद्याधर रख दिया। इस ग्रन्थ का बोझ नौ मन के लगभग था। आनन्दपुर के एक युद्ध में यह सारा ग्रन्थ वैरियों द्वारा लूट लिया गया

और इसके केवल ६२ पृष्ठ पीछे से कवि सन्तोखसिंह जी को वहाँ से मिले थे जिन में से कुछ कवियों की रचनाएँ आगे दी जाती हैं। यह सब गुरु दरबार के वैभव का एक ऐतिहासिक प्रमाण है ।

(१) कवि अमृत राय।

जाही ओर जाऊँ, अति आदर तहाँ ते पाऊँ,
तेरे गुन गन को अगाऊँ गनै सेस जू।
हीर चीर मुकता जे देत दिन प्रति दान,
तिनै देख देख अभिलाखति धनेस जू॥
गुनन मैं गुनी कवि "अमृत" पढैया मेरो,
जब इनै हेरो प्यार कीजै अमरेस जू।
श्री गुरू गोबिन्द सिंह छीर निधि पार भई,
कीरति तिहारी तुम्हैं कहि कै सन्देस जू॥

(२) कवि आलमशाह।

सोभा हूँ के सागर नवल नेह नागर हैं,
बल भीम सम, सील कहाँ लौं गिनाइयै।
भूम कं त्रिभूखन, जु दूखन के दूखन,
समूह सुख हूँ के मुख देखे ते अघाइयै॥
हिम्मत निधान, आन दान को बखानै ?
जानै "आलम" तमाम जाम आठों गुन गाइयै।
प्रबल प्रतापी पातिसाहु गुरु गोबिन्द जी,
भोज की सी मौज तेरे रोज रोज पाइयै॥

(३) मङ्गल कवि।

मंगल कवि ने महाभारत के शल्य पर्व्व का भाषानुवाद किया था जो कि संवत् १७५२ वैशाख त्र्योदशी मंगलवार को समाप्त

हुआ था। कवि जी कहते हैं कि इस पर प्रसन्न हो गुरु जी ने उन्हें "अरब खरब" (अत्यन्त) धन दिया। इसी अनुवाद में यह आशीर्वाद भी लिखा हुआ है—

जौ लौं धरन अकास गिर, चन्द सूर सुर इन्द।
तौ लौं चिर जीवै जगत, साहिब गुर गोबिन्द॥

मङ्गल कवि जी जैसी अच्छी कविता ब्रज भाषा में करते थे वैसी ही सुन्दर कविता पञ्जाबी बोली में भी रचते थे।

अनन्द दा वाजा नित्त वज्जदा अनन्दपुर,
सुणि सुणि सुद्ध भुलदीए नरनाह दी।
भौ भया भभीछणे नूँ लङ्कागढ़ वस्सणे दा,
फेर अस्सवारी आँवदीए महाँबाहु दी॥
बल छड्ड बलि जाइ छपिआ पताल विच्च,
फ़ते दी निशानी जैंदे द्वार दरगाह दी।
सवण न देंदी सुख दुज्जणा नूँ रात दिण,
नौबत गुबिन्दसिंह गुरू पातशाह दी॥१॥

ऊपर नरेस हूँ की, होहि सुभ वेस हूँ की,
कासमीर देस हूँ की, भरी आन धामरी।
बुनी कारीगर भारी, करी खूब गुलकारी,
पहिरैं भिखारी, मोल पावैं लाख दामरी॥
सीत हूँ को जीत लेति, ऐसी सोभा देह देति,
"मङ्गल" सुकबि ज्यों कन्हैया जी को कामरी।
स्याम, सेत, पीरी, लाल, जरद, सबज रङ्ग,
गुरूजी गोबिन्द ऐसी देति मौज पामरी॥२॥

जाचे ध्रू पायो है अमरपद सुरलोक,
नामा जू के जाचे दियो देहरा फिराइ जी।
बिपदा मैं लङ्का दीनी जाचे ते बिभीखन को,
"मङ्गल" सु कवि जाचौं मङ्गल सुनाइ जी॥
द्रोपती नगन होति जाच्यो सभा माहिं ठाँढ़े,
अम्बर लौं अम्बर मही पै रहे छाइ जी।
ऐसो दान दैवे को न कोऊ सतिगुरु बिना,
और कौ न जाचियै बिना गोबिन्द राइ जी॥ ३॥

पूरन पुरख अवतार आनि लीन आप,
जाके दरबार मन चित्तवै सो पाइयै।
घटि घटि बासी अबिनासी नाम जाको जग,
करता करनहार सोई दिखराइयै॥
नौमे गुरु नन्द जग बन्द, तेग त्याग पूरो,
"मङ्गल" सु कबि कहि मङ्गल सुथाइयै।
आनन्द को दाता गुरु साहिब गोबिन्द राइ,
चाहै जौ आनन्द: तौ आनन्दपुर आइयै॥ ४॥

भावैं जाइ तीरथ भ्रमति सेतु बन्द हूँ लौं,
भावैं जाइ कन्दरा मैं कन्द मूल खाइये।
भावैं देह द्वारका दगध करे छापे लाइ,
भावैं कासी माँहिं जाइ जुग लौं बसाइये॥
भावैं पूजो देहरे दिवाले सभि जग हूँ के,
भावैं खट दरसन के भेख मैं फिराइये।
जौ तूँ चाहैं मनसा को "मङ्गल" तुरति फल,
गोविन्द गुरु की एक मौज हूँ मैं पाइये॥ ५॥

समुन्द्र दे वार पार, विच्च मही मण्डल दे,
जैदा जस देस देस सब्भे लोक गाँवदे।
सेंवदे भिखारी सेई होंदे नी हजारी हुण,
वारी वारी पढ़के कवित्त नीं सुणाँवदे॥
चारे ही वरण खट दरसन जैदे द्वार,
"मङ्गल" सु कवि मन इच्छा फल पाँवदे।
वेखीं बल बाँङू कोई छली गुरू गोविन्द जी,
इक लै लै जाँदे इक लेवणे नूँ आँवदे॥ ६॥

(४) सारदा कवि

असुर बिदारबे को सुरपति पारबे को,
भगत उद्धारबे को मुकति की जरी है।
अरि दल भञ्जबे को, गाढ़े गढ़ गञ्जबे को,
सभि सुख सञ्जबे को महाँ सुख भरी है॥
करति कलोल गुरु गोबिन्द के कर माँहि,
चक्र साथ हूँ ते मारबे को विधि परी है।
फते की निसानी यहि पूरब जनम हूँ की,
तब हुती गदा अब स्याम रङ्ग छरी है॥ १॥
कुञ्ज कुञ्ज गलिनि बजाई बन बाँसरी सी;
उनही के सङ्ग सोई "सारदा" कहति है।
जमुना के तट बंसी बट के निकट सोई,
तट सतुद्रव आन साहिबी करति है॥
देखो भूप भूपनि के भूप के भगत लोगो,
भाग या छरी के मोसों कहिबे बनति हैं।
कान्ह है कै औतर्‌यो तो मुख हो रहति लागी,
गोबिन्द है औतर्‌यो तो हाथ ही रहति है॥ २॥

(५) सुदामा कवि ।

एक सङ्ग पढ़े अवन्तका सन्दीपन के,
सोई सुध आई तो बुलाइ बूझी बामा मैं।
पुङ्गी फल होति तौ असीस देतो नाथ जी कौ,
तन्दुल ले दीजै बाँध लीजै फटे जामा मैं॥
दीन दुआर सुनि कै दयार दरबार मिले,
एतो कुछ दीनो पाई अगनति सामा मैं।
प्रीत करि जाने गुरु गोबिन्द कै माने ताँते,
वहै तूँ गोबिन्द वहै बामन "सुदामा" मैं॥

(६) सुन्दर कवि

साधन को सिद्ध सरणागत समर सिन्धु,
सुधाधर "सुन्दर" सरस पद पायो है।
कुल को कलस, कवि कामना को काम तरु,
कोप किये काल, कवियन गुन गायो है॥
देवन मैं दानव मैं मानव मुनिनि हूँ मैं,
जाको जस जाहर जहान चलि आयो है।
तेग साचो देग साचो सूरमा सरन साचो,
साचो पातिसाह गुरू गोबिन्द कहायो है॥ १॥

बेदन मैं स्याम सुनो, सिन्धु मरजादा,
मेरु मराडल मही मैं, गुरुआई गुन गाए हो।
सरम के सागर, सपूतन के सिरमौर,
"सुन्दर" सुधाधर से सुन्दर गनाए हो॥

रचन में दान बानि बानी हरीचन्द की सी,
बिदत बिनय बडे बंस चल आए हो।
तेज को तरनि तरवार को परसराम,
गुरन मैं ऐसे गुरू गोबिन्द कहाए हो॥ २॥

(७) कवि सेनापति।

कवि सेनापति दरबारी कवियों में से एक प्रधान कवि हुए हैं। इन्हों ने श्री गुरुजी का अपनी आँखों देखा जीवन लिखा है। यह ग्रन्थ "श्री गुरु शोभा" के नाम से प्रसिद्ध है और ऐतिहासिक दृष्टि से एक बहु मूल्य रत्न है। एक दिन गुरुजी ने अपने कवियों को संस्कृत के चाणक्य नीति ग्रन्थ का भाषानुवाद करने की आज्ञा दी और कहा कि जिसका अनुवाद अच्छा होगा उसको एक एक छन्द के बदले एक एक अशर्फ़ी इनाम दी जायगी। यह कठिन कार्य केवल कवि सेनापति ने ही किया प्रतीत होता है। और गुरुजी इनके अनुवाद से इतने प्रसन्न हुए कि एक एक अशर्फ़ी की जगह उन्होंने कविजी को पाँच पाँच अशर्फ़ियाँ इनाम में दीं। नीचे दो छन्द "श्री गुरु शोभा" में से लिये गये हैं—

सवैया।

रण मैं धसि कै इस लोह कियो,
न कियो तिह मोह महा मन को।
जिम सारङ्ग माहि पतङ्ग परै,
न डरै करि लोभ कछू तन को।

रण मैं इम धूम करो अत हो,
मनो खेलत कानर फागन को।
इह भांति गुलावु गुलाल लिये,
करि जाति जमात के डारन को ॥१७॥५८॥
काहू कै मात पिता सुन है अरु,
काहू के भ्रात महा बलकारी।
काहू के मीत सखा हित साजन,
काहू के गेह बिराजत नारी॥
काहू के धाम माँहि निधि राजत,
आपस मों करि हैं हित भारी।
होहु दयाल दया करि कै प्रभु,
गोबिन्द जी मुहि टेक तिहारी ॥४५॥८१४

(८) कवि हंसराम।

कवि हंसराम ने महाभारत के कर्ण पर्व्व का भाषानुवाद किया था जिस पर उन्हें ६००००) रु० इनाम मिला जैसा कि कविजी ने स्वयम् लिखा है—

प्रथम कृपा करि राख कर, गुरू गोबिन्द उदार।
टका करे बखसीस तब, मोकौं साठ हजार॥

कवि हंसराम भी गुरु दरबार के प्रधान कवियों में से हुए हैं।

अवध अन्हाए कहाँ, तिलक बनाए कहाँ,
द्वारका छपाए कहाँ तन ताइयति है।
कोविद कहाए कहाँ, बेनी के मुण्डाए कहाँ,
काशी के बसाए कहाँ, लाहु लखियति है॥

मोहन मनाए कहाँ, भूपत रिझाए कहाँ,
कहाँ "हंसराम" जो धरा मैं धाइयति है।
चारहूँ बरन ताँके, हरन कलेस,
गुरु गोबिन्द के चरन, मुकति पाइयति है॥ १॥
जहाँ दिनकर को प्रताप दिन मान नाहीं,
जहाँ न दिलेस को प्रताप छाइयति है।
जहाँ न कलानिधि की कला की किरन एक,
जहाँ मृग राजन के थर धाइयति हैं॥
जहाँ सुरपति की न गति रति पति की न,
मति कहाँ धौल पति हूँ मैं पाइयति है।
जहाँ स्रुति सिम्रृति सुनी न स्रौन सुपने हूँ,
तहाँ गुरू गोबिन्द को जस गाइयति है॥ २॥

चारों चक्क सेवैं गुरू गोविन्द तिहारे पाइ,
मेरे जानै आज तू ही दूजो करतार हैं।
प्रबल प्रचण्ड खण्ड खण्ड महि मण्डल महिं,
साचो पातसाहु जाको साचो सिर भार है॥
कामना के दान बान जाकी "हंसराम" कहै,
परम धरम देखै बिबध बिचार है।
परम उदार पर पीर को हरन हार,
कौन जानै कौनै भाँति लीनो अवतार है॥ ३॥

जिन को प्रताप परि पूरन पुहमि परि,
सोऊ तेरे चरन को करत बखान हैं।
जिनै चाह चक्रवै चकित होत "हंसराम"
तेऊ तेरे चाहिबे को धारति धिआन हैं॥

जिनको बिजय पारावार पार देखियति,
प्रबल प्रचण्ड सुने जाहर जहान हैं।
जिनको न दरबार पाइयति महीनिक लौं,
तेऊ तेरे दरबार देखे दरबान हैं॥ ४॥

करन से दाता हो, बिधाता महि मण्डल के,
बैरी के बिहण्डन प्रचण्ड भूअ भार को।
पुरख पुरान से पुरानन में गाइयति,
साचे गुरु गोबिन्द अधार निराधार को॥
जौन तेरी कीरति जगातो जम्बू दीप कै कै,
पसरे उजारो परसति पारावार को।
गुरुन के बंस चल आई "हंसराम" सदा,
गुनी सों उदार, तोरादार तरवार को॥ ५॥

डुलति अपर नरेस पत्ति हत्थहि जिम हल्लै।
सूखति साइर सलल, सङ्क धूअ धाम न चल्लै॥
खलक खैल खलभलति भैल भगहि तलोक महिं।
पलक पेल गढि लेति हेत हुङ्कति सु जङ्ग महिं॥
कहि "हंसराम" सति सिमर कै सकुच रहति दिगपाल तब।
धसमसति धरन दल भार ते सो बिरच राइ गोबिन्द जब॥ ६॥

दुन्दभी धुङ्कारे बाजे मानो जलधर गाजे,
राजति निसान भय भानु छिपे जाति हैं।
हाथिन के हलका हजारनि, गने को हय,
जटति जवाहर जो जगमग गात हैं॥

कोर साजे जोर कर नालन को सोर सुनो,
सङ्कति सुरेस औ नरेस बिलखाति हैं।
"हंसराम" कहति बिराजो जिन भाजो,
गुरु गोबिन्द को माँगे कविराज चले जाति हैं॥ ७॥

(९) हीर कवि।

हीर कवि एक महान पंडित होते हुए भी अत्यन्त द्रव्य-हीन थे। कभी कभी भोजन वस्त्र से भी तङ्ग रहते थे। इन्होंने श्री गुरु गोविन्दसिंह का यश सुना तो आनन्दपुर पहुँचे और गुरु दरबार में यह कवित्त पढ़ा—

पास ठाढ़ौ झगरति झुकत दरैं मोहि,
बात न करन पाउँ महाँ बली बीर सों।
ऐसो अरि बिकट निकट बसै निस दिन,
निपट निशङ्क कूर घेरै फेरि भीर सों।
दारिद कपूत! तेरो मरन बन्यो है आज,
करिकै सलाम बिदा हूजै कवि "हीर" सों।
नातरु गोबिन्दसिंह बिकल करैगो तोहिं,
टूक टूक ह्वै है गाढ़े दाननि के तीर सों॥

इस कवित्त के समाप्त होते ही श्री गुरुजी ने कवि जी को सवालाख रुपया दान में दिया और उन्हें अपने दरबारी कवियों की मण्डली में शामिल कर लिया।

(१०) फुटकर ।

कौन बनारसी बास करै,
जहिं बासक नाग हिये मैं लसै ।
औध को औसर नाथ भयो,
रघुनाथ के पाइ न पाप नसै ॥
करि मुण्डन कौन सितासित माँहिं,
जहिं देख कै लोक 'रु देव हसै ।
इम तेग बहादुर नन्द जगे,
किन गोविन्द राइ गुरू दरसै ॥ १ ॥

बेस बेसरा है गुरु गोविन्द की सरकार,
जाँकी दहिसत गिरे कुहन के घर हैं ।
जाँकी दहिसत बर बाजन बर न धरैं,
जाँकी दहिसत छुटे बहिरी के बर हैं ॥
जाँकी दहिसत चारा चुगति न चक्रवाक,
जाँकी दहिसत सारदूल सुरत रहै ।
सगरे जहान के बिहङ्ग जिन भङ्ग कीने,
कोप सुनि आवति कुलङ्ग पाइ तर हैं ॥ २ ॥

गरुर गरूर तज्यो, बाज सभि बाज आए,
जोरावर जुग्र जानि जेर आन हैं भए ।
हाथ गुरू गोबिन्द के बेसरा सिधायो नानो,
छूट्यो लख लाखन बिहङ्ग लीन ह्वै गए ॥
चरन चपेट चिञ्च चोभते चिमिट चप्प,
मार्‍यो कुल मुरग, कलोल जिय मैं भए ।
ताँहो खिन तीखे तेज तरल तुरङ्ग केते,
मौज सों मँगाइ मोल महाँबाहु तैं दए ॥ ३ ॥

सैलहिं दबति, ऐल परति अलङ्क परि,
खैल भैल खलक खलन घर बार है।
कानन कुरङ्ग, बाचे मद के मतङ्ग कहूँ,
बाघन बिहङ्ग वृक बानर कहाँ रहै॥
झाँख रोझ रीछ घर झाखर बराहनि के,
दाहनि दरन देवि बाहन सु मार है।
परन पुकार अरि छोडे घर बार भाजे,
सो तौ गुरू गोबिन्द की सहिज सिकार है॥ ४ ॥

साज सिङ्गार चढ़े गुरु गोबिन्द,
पब्यन सृङ्ग पिसान भए नित।
लङ्क अतङ्क पुकार परी,
पुरि सङ्क बिभीखन रङ्क भयो तित॥
टूटि फनी फन टूट गे दिग्गज,
धीरज धौल की जाइ रहो कित।
कच्छप कोल बिहाल भए सभि,
चाल परे चतुरङ्ग चमू चित॥ ५॥

अरब अराकवै द्वै नाब द्वै रकाब वारे,
बारे बडे डील पील सैनक है कूत के।
चपला से चपल, चलाक चहूँ पाइ पूरे,
पौन गौन, पल कौ सके न दिन दूत के॥
मन के हरन, मन मीन के दरन,
जिनै चाहन की चाह पातसाहन के पूति के।
बखसे तिहारे गुरु गोबिन्द जी ऐसे हैं,
बिरथ है, न जाइ पाइ गए पुरहूत के॥ ६॥

पारथ समान महाभारथ मचायो,
तहाँ खायो मासहारनी अहार जेतो खाइगो।
मन्दर से मोकल गइन्दन की गरजनि,
धौंसा की धुङ्कार धरा सीस अकुलाइगो॥
ऐसो कीनो समर अमर लोक सुनियति,
तेरो ही बखान खान पान सो भुलाइगो।
मारि कै मदान अरि डारे गुरु गोबिन्द के,
काल कला फेर कोऊ कालहि सुहाइगो॥ ७॥

महाँबाहु बीर गुरु गोबिन्द तिहारे त्रास,
बैरिनि की सेना बन बन बिचरति है।
गहि करि वार काढ काट कै दुरजन दल,
जोगि जुरो जोगनि जमात बिहरति है॥
सैहथन हने रिपु हाथन के घाइन ते,
रुध्र धार ऐसी बही आस न धरति है।
आग लागे धूम भए घरन अकार सम,
मानहु झरोखन झरप्पिन करति है॥ ८॥

दिस दिस देस देस एस दिगपाल केते,
आज करे काल केते गुर्नाह गहति हैं।
प्रबल प्रतापी पातसाह साचे सुनियति,
तेरे सिर भार भू को सारदा कहति हैं॥
ओजन के सूर महाँ मौजन सों घेर मार,
और न बिचार कीजै दारिद दहति हैं।
हरि माँगे बर देति माँग गुरु गोबिन्द को,
करतार माँगे करतार दे रहति हैं॥ ९॥

जौने देस जैयति नरेसन के पास तहाँ,
ठौर ठौर तुमरो ही जस गाइयति है।
पाइ गहे तेरे पाइगहे पाइयति,
कहूँ और जाइ गरजाइ गरो पाइयति है॥
ऐसे गुरु गोबिन्द की सुकबि सरन्न ताको,
पूरन प्रताप जाको जग छाइयति है।
राजी हूजियति गाजियति जाके दरबार,
घर बाजी बाँध बाजी लैनि आइयति है॥ १० ॥

श्री गुरु गोबिन्द खग्ग गह्यो,
अरि फौजन के इभ सैल बिभैलहि।
साँग सँभार दई गज सीस,
असीस दई हरि घूमति गैलहि॥
घाइन ते भभकै निज स्रौन,
फुहारन लौं उपमा छबि फैलहि।
दो भुज हेल मनो हनुमान,
हिलावति जान सञ्जीवनि सैलहि॥ ११ ॥

महाँबाहु बिरच्च बनैति गुरु गोबिन्द जी,
अरि गज मारि डारे मानो दरखत्ति हैं।
भैरों औ बिताल भूत करति बिहार तहाँ,
हार करबे को मुखो पञ्च परखति है॥
लहू कीच भरे गज मोती लै गगन,
गीध गरजे अगन देखे हर हरखति है।
धोखे न भखति, छूट धरन लखति,
मनो बिधरे ह्वै बादर नखत बरखति हैं॥ १२॥

बाजति निसान के दिसान भूप भहिरनि,
हाला डोल परति कुबेर हूँ के घर मैं।
होति है अतङ्क सङ्क लङ्क हूँ मैं मानियति,
रङ्क है बिभीखन सो डोलति डहर मैं॥
भू मैं गुरु गोबिन्द सों भूपति कहति ठाँढ़े,
भू मैं हमैं राख जो तुहारे आवै घर मैं।
अरिनि की रानी बिललानी चहैं पानी,
ते वै मोतिनि की माल लै निचोवती अधर मैं॥ १३॥

सील रस साइर, रजीलो रण रङ्ग धीर,
जङ्ग जुरे जैतवार करनी कुबेर की।
कहै कबि कौन, तेज तरनि लौं तपे तुअङ्ग,
पारावार लगि फैली जीत समसेर की॥
कर रण रोस खल खण्डनि कटक कूट,
दुजन दरेर जग जीत जिमी जेर की।
तेग़ त्रास साचो गुरु गोबिन्द जू तेरो जस,
जगर मगर भए सोभा गई मेरु की॥ १४॥
सुन्दर अनङ्ग, किधौं चपल कुरङ्ग सम,
गरर के सङ्ग चलि आगे ही को चेत हैं।
पवन को पाछे करि, मन को गवन हरि,
दौर मैं पलक माँहि फाँध जाहिं सेत हैं॥
रवि रथ चढ़ति उतर जाति याँही लिये,
मेरे एक ए अनेक साजन समेत हैं।
ऐसे बाजी देखियै ना कहूँ तीन भवन में,
कविन को जैसे गुरू गोबिन्द जी देति हैं॥ १५॥

हूरन को नर सूर मिले बर,
चौसठ जोगनि सैन अघाई।
देति असीस सबै मिल जम्बुक,
गीधन, ते रण भूम सुहाई॥
छाड सुहाग लिये बिधवा,
इक बैरन की तिय को दुखताई।
खग्ग गहे गुरु गोबिन्द के,
हरि नारद के घर होत बधाई॥ १६॥

आवति न तीर तीर, मान न कमान करे,
गोलन की गूँद दूँद बूँद मनो बार है।
छीन बरछीन लेय, सैहथी हैं कोटिक,
कटारन को बीर अति बैठी बरदार है॥
छुरी न छुहति, गुरजन हूँ की गुरज न,
बर तबरन को निवारति निहार है।
सेना अरि घा किये, कहा कहूँ सूहा की,
गुरू गोबिन्द के कर ऐसी बाँकी तरवार है॥ १७॥

चढ़ति ही बाजी चढ़्यो गाढ़े गढ़ चाहबे को,
दाहिबे को दुख रीझै बर ज्यों भवानी को।
आवति ही दाढ़ी छाती दाढ़ी छित पालनि की,
रज को करैय्या उनही की रजधानी को॥
महाँबाहु गुरू जी गोबिन्दसिंह पारथ ज्यों,
भारथ को जीत लेति बसुधा बिरानी को।
पाग हूँ को बाँधबो कछुक दिन पाछे सीख्यो,
पहिले ही सु सीख्यो सिंह बाँधबो कृपानी को॥ १८॥

दिज्जन के दल, जोगी जङ्गम जमात द्वार,
बन्दी जन कित्त कहैं, जगत मैं जाँहिकी ।
सोभा सुभ लेति देति लच्छन को लच्छ रोज,
देख देख सुधि भूल जाति सुरनाहि की ॥
गोबिन्द गुरू को दान मालम जहान भयो,
भिच्छक किये हैं भूप, परवाह न काहि की ।
बलि, बैन, बिक्रम न भोज हूँ मैं मौज ऐसी,
जाकी एक मौज नव रोज पातसाहि की ॥ १६ ॥

रावन ते छीन दई बखस बिभीखन को,
बावन ह्वै बाँध्यो बलि जब तुम चाही है ।
कवि चारमुखि रच्यो थम्भ बीच नरसिंह,
प्रहिलाद जू की पैज पूरन निबाही है ॥
गुरू जी गोबिन्द राइ चाहो तुम सोई करो,
बूझ देखो बेद इस बात को उगाही है ।
और पातसाही सभि लोगन को पातसाहु,
पातसाहों पर साची तेरी पातसाही है ॥ २० ॥

तो सों बैर बाँध बैरी धीर न धरति कहूँ,
धौंसा की धुङ्कार धराधर धसकति है ।
दल के चलति महि हालति, हलति कोल,
कूरम कहल्ल, फनी फनि न सकत्ति है ॥
प्रबल प्रतापी पातिसाहु गुरू गोविन्द जी,
तेरे भयभीत भारी भूप ससकत्ति है ।
होति भूमचाल, दिगपाल पाइमाल होति,
हलके हहल्ल हाथी माथे मसकत्ति हैं ॥ २१ ॥

महाबाहु बीर गुरू गोबिन्द तिहारे रोस,
बैरन की बधू बन बन बिलखानी हैं।
करो न गवन भूल भवन के भीतर ते,
चढ़ती पहार निराधार अकुलानी हैं॥
सुन्दर सरोजमुखी दुखी भई भूख प्यास,
पत्तिनि सों खीझैं कहें मोतिनि में पानी है।
चन्द सी चकोर जानैं, बिम्ब से सूआ कै मानैं,
कोकल सी काक, नाग मोरन की मानी हैं॥ २२॥

सतिजुग प्रबल प्रगट परसराम ह्वै कै,
छेक छाडे छत्री कर काहूँ अत्र न धरयो।
त्रेतै रघुनाथ ह्वै के रावन सनाथ कीनो,
गीधन खवायो मास लङ्कपति जो लरयो॥
द्वापर कन्हाई बनि बाँसरी बजाई,
सुनि सुरि मुनि नर काहूँ धीर न तबै करयो।
कलजुग तारबे को साधन के पारबे को,
सुन्दर सरूप गुरू गोबिन्द है औतरयो॥ २३॥

गौरि दुरावति गोद गनेसहि,
अङ्ग बिभूत महेस मले नित।
सोर परे दिगपालन कै,
भुवपालन के मन माँहि नहीं थित॥
द्वार मुँदे पुरि सत्रुन के,
गुरु गोबिन्द ख्याल ही खग्ग गहे इत।
हाथी न साथी सँभार सकैं,
कोई चाल परे चतुरङ्ग चमू चित॥ २४॥

बन टुट्टति गिर फटति, छुटति धीरज सु धरन तन ।
दिग्गज दिग कलमलति, हलति तल सेखनाग मन ॥
उडयि रेन हय खुरनि सूर वर कहूँ लुकगय ।
विभीछन भहिरति मूँद गढ़ द्वार दुरति भय ॥
कर गहि कृपाण गोबिन्द गुर, जब सलोह पक्खर सजति ।
कल मलति हरति पुर चक्र्रै, सु धरन छाड घर ते भजति॥२५॥

कवि मेघ सिंह ।

कम्पति मेरु कुबेरु देर लग दिग्गज डोलति ।
विन्धु टूक ह्वै जात सिन्ध सूकत जिय बोलति ॥
धूर पूर नभ रहित सूर रथ पन्थ न सुज्झति ।
धरति परत सुर यान, प्रान निकरति अरि लुज्झति ॥
हरि हर विरञ्च चित चकित फन कच्छप कोल त्रिसुद्ध ह्वै ।
गोबिन्द सिंह जब जङ्ग हित चढ़ तुरङ्ग पर क्रुद्ध ह्वै ॥ १ ॥

श्री गुरू गोविन्द सिंह चढ़त अखेट जब,
पब्ब सभ दून ह्वै न भान पत्थ पात है ।
धूरन सों पूरन ह्वै परति विमान देव,
धरा अकुलात कीच होति सिन्ध सात है ॥
दिग्गज चकारैं भूम चाल न सँभार सकैं,
जान भार परति सँभार गिर जाति है ।
कूरम की पीठ पर फनी पटकात फन,
परति निसान पर मानो चोट पाँत है ॥ २ ॥

कवि सन्तोख सिंह ।

निकसति म्यान तै ही छटा घन म्यान तै ही,
काल जीह लहि लहि होइ रही हलि हलि ।
लागै अरि गर गेरै धर पर धर सिर,
धरति न धीर चारों चक्कि परै चलि चलि ॥
कौन रहै ठाढ़ो श्री गोबिन्द सिंह आप आगे,
जल थल उथल पथल होइ थलि थलि ।
भाजैं बिन देर, नेर करैं न "सन्तोख सिंह,"
हेर समसेर सम सेर तेरी पल पल ॥ १ ॥
बैठकै बीरासन सरासन को पान गहै,
बान को निकासन निखङ्ग ते सुधारहीं ।
बैरिनि को देख रस बीर बने बेख धारे,
क्रोध को बिसेख सु प्रतञ्चा मैं सञ्चारहीं ॥
तान तान कान लग मोचति हैं ताक ताक,
भाज भाज जायँ रिपु धीरज न धारहीं ।
आनन्द के कन्द श्री गोबिन्द सिंह दुन्द हरि,
सोभति आनन्दपुर तीरन प्रहारहीं ॥ २ ॥
रिपुन को ताप देति, लेति हैं प्रताप पुञ्ज,
कायरता देति, जब लेति प्रान जोध को ।
धीरज को लेत हैं, अधीरज को देति उर,
बुद्धि बोध लेति आप, देति हैं अबोध को ॥
लेति बिजै लच्छमी, पराजै अरि देति, जब
तीरन की चोट देति, लेत प्रान जोध को ।
श्री गोबिन्दसिंह जुद्ध रच्यो है बजार किधौं,
करति बनज लाभ वारो सोध सोधि को ॥ ३ ॥

मास बिखै एक दिन पूरन रहिति सोऊ,
ए तौ सदा एकसार पूरन रहिति है ।
सो तो गुरू दोख हूँ ते तृस्कृत होयो रहै,
ए तौ ऐसे दोस को दरस ते दहित है ॥
दिन मैं मलीन सोभाहीन सो "सन्तोखसिंह,"
सदाई प्रकासै इह सुजस सहित है ।
श्री गोबिन्द सिंह मुख चन्द की बराबरी को,
कैसे सोऊ चन्द सकलङ्क ह्वै चहित है ? ४ ॥

कान्ति कलिताल मैं प्रफुल्लित बिसाल दल,
मृदुल मृदल तुल्य लाल लाल मानिये।
राजत मराल राज सन्तन समाज पास,
पाँस है पराग दिन रैन मैं सुहानिये ॥
सिलीमुख सिक्ख मन सौरभ आनन्द हेत,
छोरत न आस पास सदा सो भ्रमानिये ।
उद्भ्रू करम छुऐ सकै न भरम मल,
ऐसो श्री गोबिन्द सिंह पदकञ्ज मानिये ॥ ५ ॥

दोऊ कर बन्द कर बन्दत गोबिन्द सिंह,
देत हैं आनन्द सुखकन्द अघ मन्द ही ।
स्याल ते मृगेन्द्र पटबीजने दिनेन्द्र करे,
कीट ते गजेन्द्र पन्थ दियो गति बन्द ही ॥
मसक खगेन्द्र जिन काक ते मराल वृन्द,
रङ्क जे नरेन्द्र करे बन्दत मुकन्द ही ।
सुन्दर मुखारबिन्द सोहत "सन्तोख सिंह,"
हीन जे कलङ्क तौ समान होत चन्द ही ॥ ६ ॥

राम छत्रि बन्ध पर, राम दसकन्ध पर,
राम जरासिन्ध पर, त्रै ज्यों नर सिंह हैं ॥
रुद्र जिउँ मार पर, वैनतेय मार पर,
पौन दीप मार पर, मार पर सिंह हैं ॥
सूरतम वृन्द पर, सूर रण दुन्द पर,
सूर दिती नन्द पर, दूजे नरसिंह है ।
काल सरबंस पर, दावा वन बंस पर,
त्यों मलेच्छ बंस पर, श्री गोबिन्द सिंह है ॥ ७ ॥
सतिजुग बावन सरूप ह्वै न उपजति,
बलि कर जग्ग सुर पुरि दैंत बासते ।
भनति "सन्तोख सिंह" त्रेतै जो न रामचन्द,
रावन को राज रहे कोऊ न बिनासते ॥
द्वापर मैं स्याम घन होते न करति कौन,
दोखीन को दुःख, सुख सन्तन के वासते ।
तैसे कलि काल माँहि गुरू रूप होवति न,
कौन हिन्दवानो राख धर्म्म को प्रकासते ॥ ८ ॥
छाइ जाती एकता, अनेकता बिलाइ जाती,
होवती कुचीलता कतेबन कुरान की ।
पाप ही प्रपक्क जाते, धरम धसक्क जाते,
बरन गरक्क जाते सहित बिधान की ॥
देवी देव देहरे "सन्तोख सिंह" दूर होते,
रीति मिट जाती कथा बेदन पुरान की ।
श्री गुरु गोबिन्द सिंह पावन परम सूर,
मूरति न होती जौ पै करुणानिधान की ॥ ९ ॥

* सत्य श्री अकाल *